सन्त बख्श सिंह 'चंचल'

गुंजार

सन्त बख्श सिंह 'चंचल'

(काव्य संग्रह)

रचयिता :

श्री सन्त बख्श सिंह 'चंचल'

प्रथम संस्करण

१२ मई १९८१

मूल्य : दस रुपये
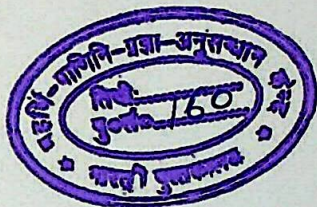
श्रद्धेय श्री गणपतराय आर्य

को

सादर समर्पित
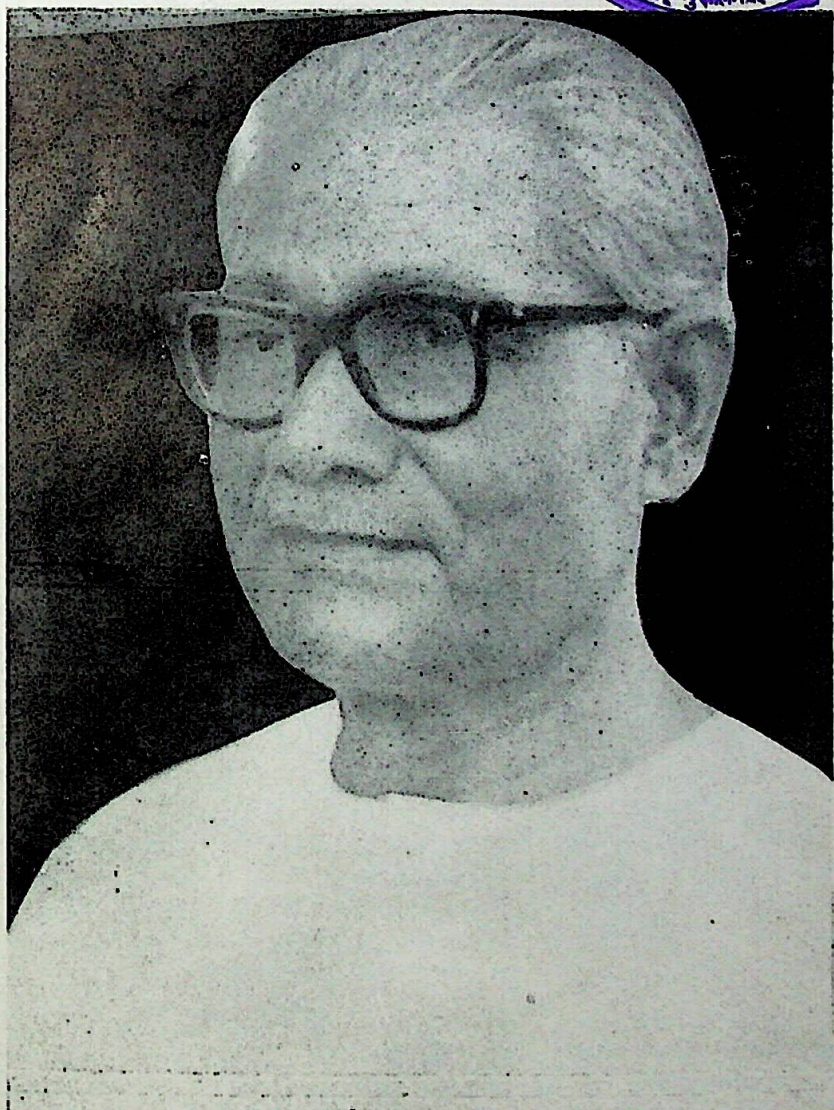
श्री सन्त बख्श सिंह 'चंचल'

प्रकाशक की कलम से

इस अर्थ तंत्र के युग में कितनी ही अनमोल कृतियाँ प्रकाश में न आ सकने के कारण प्रतिभावान रचनाकारों की रचनात्मक शक्तियाँ पंगु होती जा रही हैं और ऐसे रचनाकार अँधेरे में भटक रहे हैं। इस तरह बिखरी कृतियों को प्रकाश में लाना हमारा सामाजिक दयित्व है, जिसके निर्वाह हेतु हम सतत प्रयत्नशील हैं।

यह 'गुंजार' काव्य संग्रह हमारे इसी दायित्व–निर्वाह रुपी विटप के प्रथम पुष्प को श्री सन्त बक्श सिंह 'चंचल' ने अपने जीवन के झंझावातों के बीच पुष्पित किया है। चंचलजी को सिंगार के द्वार पर खड़ारह कर काव्य रचना का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, अपितु उनका युवक जीवन तो अंधकारमय ही रहा है। चंचलजी का जन्म उत्तर प्रदेश के सुलतानपुर जनपद में गोमती नदी के किनारे बसे हुये बुवरिया गांव के एक सामान्य किसान परिवार में हुआ है और किसी कारण से यह नाम भी उन्हें अपने जन्म के साथ विरासत में मिला है। उनके जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा उन्हीं किसानों के बीच गुजरा है।

ऐसे अभाव ग्रस्त जीवन में पले हुए उनके व्यक्तित्व को साहित्यिक माहौल सन् १९४६ ई. में पहिली बार इसी बम्बई महानगर में मिला। उस दिन की, श्री बच्चन जी के मुग्ध कंठ से सुनी हुई मधुर स्वर लहरी चंचल जी की सुखद स्मृतियों में आज भी ताजा है, जिससे प्रेरित होकर वह काव्य रचना की ओर उन्मुख हुये। उनकी शिक्षा सीमित थी, उनके पास साहित्यिक ज्ञान की कोई पूंजी नहीं थी।

सामाजिक और राजनीतिक कार्यो का थोड़ा बहुत अनुभव तथा उनके अध्ययनशील और कर्मठ जीवन ने ही उनको निरन्तर आगे बढते रहने के लिये प्रोत्साहित किया। चंचलजी को जब भी, जो कुछ ठीक लगा, वैसा ही लिखकर संतुष्ट रहे और वह किसी काव्य प्रभाव अथवा किसी वाद-विवाद के दायरो में नहीं घिरे।

आरंभ में उनकी कुछ रचनायें 'राजीव' मासिक तथा दैनिक विश्वमित्र में प्रकाशित होते ही स्थानीय रचनाकारों में चंचलजी का एक नाम और जुड़ गया। दैनिक विश्वमित्र के प्रधान सम्पादक पं सुन्दरलालजी त्रिपाठी से चंचलजी को कवि बनने में जो स्फूर्तिदायक प्रोत्साहन मिला उस स्नेह का अगाध आदर चंचलजी के हृदयमें आज भी हैं। फिर भी उनकी रचना प्रवृत्ति स्वाँत सुखाय ही रही है। उनकी रचनाओं का सॅकलन कभी प्रकाशित भी होगा, इस बात की कल्पना उनके हृदय में कभी जाग्रत नहीं होसकी। यह भी एक संयोग ही है कि इस संकलन के प्रकाशन के लिए चंचलजी को विवश होना पड़ा है।

'गुंजार' आपके हाथों में सौंपकर उसके गुण-दोष परखने का काम हमने आप पर छोड़ दिया है। फिर भी हम इतना अवश्य कहेंगे कि जिन परिस्थितियों में इसकी रचना हुई है, यदि वह ग्रहणीय न भी हो तो भी सराहनीय अवश्य है। हमारे इस अनुभवहीन प्रयास में अनेक त्रुटियों का होना स्वाभाविक ही है। अतः आप हमारी खामियों को ढूंढने के बजाय रचनाकार के मनोबल को ऊँचा उठायेंगे यही आशा और हृदय में अशीम अभिलाषा है।

–सत्यनारायन सिंह

गुंजार परिवार

श्री हरिप्रसाद अग्रवाल

श्री सत्यनारायन सिंह

श्री शिवकुमार चौधरी

श्री देवकीनन्दन 'लाला'

श्री हरिगेन सिंह

श्री संतोष केजरीवाल

श्री द्वारकानाथ मिश्रा

बम्बई विश्वविद्यालय–हिन्दी विभाग के अध्यक्ष

डॉ. सी. एल. प्रभात द्वारा सस्नेह

दो शब्द : रचना के पहले

पिछले दो दशकों में हिन्दी-कविता के साथ एक अजीब ट्रेजेडी हुई। वह "जरूरत से ज्यादा समझदार" लोगों के चक्कर में फँस गई, जिन्होंने नये युग या नई काव्य-धारा के प्रवर्तक बनने के मोह में बहुत से आन्दोलन खड़े कर दिये। आन्दोलन अपने में बुरी चीज नहीं है, किसी अवांछनीय स्थिति की जड़ता को तोड़ने के लिए वह आवश्यक है, पर पिछले आन्दोलन मूल्य बदलने की नियत से नहीं हुए कुछ लोगों को जमाने या उखाड़ने के लिए किए गए। मूल्यों की लड़ाई लड़ने की जगह कविता मूल्यों के पक्षधरों की लड़ाई लड़ने लगी। इस आपाधापी में रचनात्मक स्वर उपेक्षित रहे और वे ठीक तरह से अपनी पहचान नहीं बना पाये। इसी के साथ एक बात और हुई। नये लेखक को, जिसे आस-पास की जिन्दगी से सख्त नाराजगी थी (और ठीक थी) दिशाहीन आक्रोश ने घेर लिया और वह इस आक्रोश को विद्रोह मानने लगा। मगर आक्रोश और विद्रोह दो अलग चीजें हैं। आक्रोश वर्बर, घातक और सृजनहीन होता है, वह क्रोध बनकर रह जाता है, जबकि विद्रोह का पर्यवसान नये मूल्यों की स्थापना में होता है। विद्रोही ग़लत मूल्यों से टकराता है और निर्माण की नई संभावना की ओर युग को उन्मुख

करता है। खैर, इस आक्रोशी और आन्दोलनधर्मी कविता ने एक बहुत शक्तिशाली लॉबी तैयार कर ली, जो बुद्धिजीवी अन्दाज के साथ विश्वविद्यालयों, बड़े पत्रों तथा संस्थानों के भीतर से बोलने लगी और लगभग दो दशक तक सही कविता की पहचान में बाधा बनी रही। मगर, इस सबके बावजूद एक बात अच्छी हुई, बहुत से लोग जो जिन्दगी से सीधे जुड़े थे और शास्त्र की ज्यादा चिन्ता नहीं करते थे लिखते रहे। वादों के विवादों और किसिम-किसिम की कविता के सैलाब के उतरते ही ऐसी कविता धीरे-धीरे सामने आने लगी।

श्री संत बख्श सिंह 'चंचल' ऐसे ही एक अनासक्त रचनाकारों में से हैं, जो आंदोलनों की राजनीति से दूर सिर्फ अपने मन की मोहक पीर या प्यार को स्वरों में बाँधते रहे हैं। जब-जब उनकी प्यास बहुत अकुलाई और उन्होंने देखा कि बूँद-बूंद पर पहरा है, तो उनका चंचल मन गीतों में रम गया। इसीलिए इनकी कविताओं में एक रुमानी भंगिमा है। खुरदरी खादी को देखकर इनके कोमल मन का अनुमान नहीं लगाया जा सकता और जो लोग यह जानते हैं कि सन् १९४३ में नेवल विद्रोह के समय बम्बई के जनान्दोलन में ये एक बड़े दस्ते के नेता थे, उन्हें तो इनकी रुमानियत पर और भी आश्चर्य होता है। पर, सत्य यह है कि इस कर्मठ व्यक्ति ने जहाँ अपना विद्रोह समाज को दिया, वहीं अपने जीवन की समस्त कोमलता कविता को दे दी। और यह कोमलता उनके उज्ज्वल स्वप्नों और आकांक्षाओं से अलंकृत है।

कविता-संकलन आपके सामने है। और जो कुछ कहना होगा कविता स्वयं आपसे कहेगी। संगीत की सिद्धि गायक के अधरों में नहीं, श्रावक के मानस में होती है। यही बात कविता के लिए भी सच है।

प्रभात

अनुक्रमणिका

□

पृष्ठ

शारदे अयि मातृ मेरी

मौन मेरा मुखर कर दो
शारदे अयि मातृ मेरी !

मन्द मति मैं स्वर विलक्षण
सून्य में मँडरा रहे हैं
शब्द कुछ गूँगी गिरा के
कंठ में घबरा रहे हैं
मूढ़ मैं इतना कि पावन
चरण रज लेने न आया
इस लिये कल्याण की दो
उक्ति अब तक लिख न पाया

अब गिरा वाचाल कर दो
प्राण में स्वर मधुर भर दो
मैं लिखूँ जो गीत उसको –
गुनगुनाये भ्रातृ मेरी !
शारदे अयि मातृ मेरी !

कोसती मेरी उपेक्षा
कह रही मुझको कलंकित
रिक्त घट ज्यों व्यर्थ तनु क्या
भाग्य में चिर-जन्म अंकित
वत्स तव कितने अपरमित
दे गये जग को अमिय-निधि
अमिट खच दूँ रेख में भी
मातु कह दो सकल वह विधि

कल्पना को पथ प्रखर दो
लेखनी गतिवान कर दो
छन्दयुत वक्तृत्व पढ़ कर
झूम जाये धातृ मेरी ।
शारदे अयि मातृ मेरी !

गत विगत अवगत नहीं कुछ
वर्ण क्या, क्या कर्म मेरा
पर हृदय-अनुराग शैशव
बन रहा हठ-धर्म मेरा

चाहता कुछ प्यार लिख दूँ
कुछ नया त्यौहार लिख दूँ
इस धरित्री के करम में
स्वर्ण-सा संसार लिख दूँ

आज ऐसा वरद वर दो
युग ढ़ले वह गुंज-स्वर दो
जानती हो तुम मनोरथ
इस हृदय की ज्ञातृ मेरी ।
शारदे अयि मातृ मेरी !

पूछते मुझ से मेरे प्राण

कहाँ की वीणा किसकी तान
पूछते मुझ से मेरे प्राण

लगाने भवसागर की थाह, बना मैं धरती का मेहमान
किसी के सरगम की सुन गूँज, लगा बन जानें मैं बेभान
न पाता उसको मैं पहचान, कूल पर गाता कोई गान

कहाँ की वीणा किसकी तान
पूछते मुझ से मेरे प्राण

साँझ का अरुण हुआ रँग श्याम, क्षितिज में रवि भटका पथ भूल
मुग्ध-मन प्राची का मृदु हास, बन गया सोने का सा फूल
बिखरती ज्योतिर्मय मुस्कान, हो गई यह धरती द्युतिमान

कहाँ की वीणा किसकी तान
पूछते मुझ से मेरे प्राण

फटा नभ के मन का अवसाद, बन गया अंगारों का देश
यामिनी का श्रम-सीकर स्वेद, सुधा बन बरस रहा निष्शेष
भीगता है यह जग अनजान, तानता कोई हीरक छान

कहाँ की वीणा किसकी तान
पूछते मुझ से मेरे प्राण

धरणि के जल-थल में सानन्द, भर रहा किस मादन का दान
थिरकते भव-जन भर उत्साह, चढ़ा जिन पर सुख का उन्माद
हुआ है चल-चित-पग गतिवान, खो रहा रूनझुन में इन्सान

कहाँ की वीणा किसकी तान
पूछते मुझ से मेरे प्राण

प्रकृति के यौवन पर उल्लास, सृष्टि की सुन्दरता का भोग
वासना का कौतूहल प्यार, जुटाया किसने यह संयोग
सुधा-सा रूप-सुरा का पान, छा रहा ज्ञानी पर अज्ञान

कहाँ की वीणा किसकी तान
पूछते मुझ से मेरे प्राण

गूँजता श्रुतियों का संदेश, खोलता बन्द हृदय के द्वार
मनुज हैं बना गर्व का गेह, अगम यह माया का संसार
अरे ! रे! माटी के इनसान, छोड़ दे काया का अभिमान

कहाँ की वीणा किसकी तान
पूछते मुझ से मेरे प्राण

जीना कला है

चाहता है कौन आँसू के जलधि में डूब जाना
कौन है जिसने कि जग के दर्द को दुख-दर्द माना

आग जलने और बुझने की व्यथा
प्राण का सहना समय की बात है

प्यार के सौ बन्धनों से एक मन को बाँधता हूँ
और अपने चरण डग मग को डगर पर साधता हूँ
मन न बहके पग न फिसले जिन्दगी के हर चरण में
हो न हो! कोई प्रभंजन सामने, यह मानता हूँ

लक्ष्य पाने की तृषा की तृप्ति ही—
साधना की रात्रि का नव प्रात है
आग जलने और बुझने की व्यथा
प्राण का सहना समय की बात है

जब अभावों की घड़ी ही, कर्म-पथ पर डोलती है
तब न जाने व्यग्र मन की ग्रंथि कैसे खोलती है
थक चुका है मौन मेरा, गरल पी कर हर डगर पर
किन्तु मचली भावना, कुछ प्रबल हो कर बोलती है

पंथ के आह्वान पर मन विचलना
यह सफलता के हृदय पर घात है
आग जलने और बुझने की व्यथा
प्राण का सहना समय की बात है

साँस-अन्तर दाह का क्षण, है मनुज की प्यास विह्वल
प्यास की बढ़ती निशा में हैं तड़पते मौन हलचल
प्यास के आधार पर ही जिन्दगी यह गुनगुनाती
जिन्दगी है वह कि जिसमें, खिल उठे हों दर्द-शतदल

जीत उसकी जो खिजाँ में फूल गाये--
फ़ूल पर गाना भ्रमर को मात है
आग जलने और बुझने की व्यथा
प्राण का सहना समय की बात है

सिसकियों के अगम सर में डूबना है एक अवसर
और दुखः पर उर्मियों का तैरना है एक अवसर
अवसरों से प्यार करके जन्म भर जीना कला है
अतल दुखः के अंकुरों का सतह छूना हैं सुअवसर

हार है कलकल लहर की शोक पर–
लहर पर खिलता दरद जलजात है
आग जलने और बुझने की व्यथा
प्राण का सहना समय की बात है

जय - पराजय

है अनिश्चित मरण-जीवन में कहाँ किसकी विजय है ।
हर उदय है अस्त पहले, अस्त के पहले उदय है !

रोज आती रात काली
निगल जाती है उजाला
रोज़ पीता है सबेरा
रात्रि का पीयूस काला

यह मिलन है, या कि छल है
या कि जीवन का समर्पण

जय-पराजय क्या लिखूँ मैं, कौन दोनों में अजय है ।
हर उदय है अस्त पहले, अस्त के पहले उदय है !

इस धरा पर गगन औंधा

या धरा उसमें लटकती
बात तो दोनों सही हैं
और दोनों हैं खटकती

हैं गगन को स्वर्ग धरती
और जग को स्वर्ग है नभ

भूमि तज दूँ तब चुनूँ क्या, यह बड़ा दुर्गम विषय है।
हर उदय है अस्त पहले, अस्त के पहले उदय है!

मरघटों की धूलि उड़ कर
बन गया आकाश विस्तृत
वस्तु है अब कल्पना की
थी यहाँ पर जो तिरस्कृत

पंथ चुनने की कला में
है छिपा सब मुक्ति-जीवन

मरण पहले ही जनम है, जन्म किसका कब अभय है।
हर उदय है अस्त पहले, अस्त के पहले उदय है!

साहस

यहाँ दो राहों के दो छोर
मुझे तुम छोड़ चले किस ओर

न मैंने जीवन को जाना
न सुख-निद्रा में सो जाना
पंथ-जीवन ही पहिचाना
दर्द में सीखा मुस्काना
जानता हूँ मंजिल किस ओर, कहाँ पर मुझे मिलेगा भोर
यहाँ दो राहों के दो छोर, मुझे तुम छोड़ चले किस ओर

पंथ है आगे का दुर्गम
घिरा-सा लगता उस पर तम
कौन अब चमकेगा चमचम
जगत यह सारा है निर्मम
घटायें घिरी गहन-घनघोर, दिशाओं में सन-सन का शोर
यहाँ दो राहों के दो छोर, मुझे तुम छोड़ चले किस ओर

तिमिर का परदा उठने को
उषा की पौ जब फटने को
निशा हैं सारी कटने को
तुम्हारा सँग जब छुटने को

वायु की तूफानी झकझोर, पाँव हैं चलने में कमजोर
यहाँ दो राहों के दो छोर, मुझे तुम छोड़ चले किस ओर

नियति के नियमों का बन्धन
चक्र की गति का गुंजन
हो रहा सागर में गर्जन
इसी से व्याकुल है तन-मन

किनारा दूर क्षितिज का कोर, न जायें लहरें नैया बोर
यहाँ दो राहों के दो छोर, मुझे तुम छोड़ चले किस ओर

अभी तक तुम दुलराते थे
साथ में रोते-गाते थे
खार जब चुभ-चुभ जाते थे
शूल पथ के मुस्काते थे

मिले जो पंथी-पंथ कठोर, भर गये उर में नेह-हिलोर
यहाँ दो राहों के दो छोर, मुझे तुम छोड़ चले किस ओर

संग क्या साहस छोडोगे
जन्म का बन्धन तोडोगे
समय-गति फिर कब मोडोगे
सुखों को कैसे जोडोगे

चलो ले आयें पहले भोर, धरा पर स्वर्ण-किरण की डोर
यहाँ दो राहों के दो छोर, मुझे तुम छोड़ चले किस ओर

जीवन को संघर्ष चाहिये

नहीं चाहता मैं कि पंथ पर, मेरे प्राण सहें लाचारी
डूब रहा तो डूबे सूरज, आती तो आये अँधियारी
मेरी राह नहीं दो दिन की–
मुझे अवधि शत वर्ष चाहिये।
जीवन को संघर्ष चाहिये।

मेरे नभ पर घिरो न ऐसे, ओ उड़ जाने वाले जलधर
घुमडे हो तो गरजो–बरसो, रुको युगों की प्यास बुझाकर
बूंद शेष रह जाय न कोई–
घन में यह उत्कर्ष चाहिये।
जीवन को संघर्ष चाहिये।

स्वप्न–स्वर्ग मैं नहीं खोजता, शूलों की शैय्या पर सोया
गहन विचारों के सागर में, नहीं एक भी क्षण है खोया
शूल कि जिससे जाँय फूल बन –
सिर्फ यही निष्कर्ष चाहिये।
जीवन को संघर्ष चाहिये।

चरण चलें चाहे जिस पथ पर, अपनी मंजिल मैं पा जाऊँ
गान बने वह सारे जग का, अँधियारे में जो कुछ गाऊँ
प्राण लुटाकर भी यदि सम्भव –
हो, तब ऐसा हर्ष चाहिये।
जीवन को संघर्ष चाहिये।

हिम और सागर

इस निर्झर के स्वर में कितना दर्द भरा है
कोई इतना दर्दीला गाकर तो देखे

नीचे से ऊपर उठना कितना पावन है
बुरा न कुछ ऊपर से नीचे गिर जाना भी
गिर–गिर कर जब अपनी राह बना ले कोई
तोड़ शिलाओं को फिर आगे बढ़ जाना भी
इतनी सी यह बात सोचना बहुत सरल है–
कोई पथरीले पथ पर आकर तो देखे
कोई इतना दर्दीला गाकर तो देखे

वैसे तो कुछ गति होती है चल चरणों में
तूफान बाँध कर अगर चले तो चलना है
साथी बहुतेरे मिलते हैं हर पंथी को
जो बूंदों में सागर भर दे तो मिलना है
जहाँ समर्पण अमर बना है तरल कणों का–
कोई उस महिमा में लहरा कर तो देखे
कोई इतना दर्दीला गाकर तो देखे

उच्च शिखर की अभिलाषा जिसको बाँधे है
उसकी तब गिनती करते हैं पाषाणों में
गिरि माला की चोटी जिसे न बाँध सकी है–
रूप बदल वह बही धरा के मैदानों में
प्राण सराहा करते जिसके उपकारों को–
कोई उस हिम का जीवन पाकर तो देखे
कोई इतना दर्दीला गाकर तो देखे

तुम नहीं जानते हो

मुझे देख यूँ ही मुस्काने वालो
हकीकत सही तुम नहीं जानते हो

बँधी राह मेरे चरण में यहाँ जो–
घसीटे मुझे वह लिये जा रही है
नहीं जानता मैं कि मंजिल कहाँ पर–
न जाने कहाँ तक बढी जा रही है
डगर के किनारे खडे फूल सुन लो–
कि संसार का राज तुम जानते हो
मगर प्राण मेरे विकल आज हैं क्यों–

मुसीबत यही तुम नहीं जानते हो
हकीकत सही तुम नहीं जानते हो

युगों से पडी इस डगर से कभी भी–
न पूछा किसी ने कि तू मौन है क्यों
खड़ा उस तरफ डाल औ' पात के बिन–
विकल प्राण किस का बना ठूँठ है यों
चहकते विहग बेसुरा तुम न गाओ–
पपीहा तृषाकुल हुआ जा रहा है
छिपी है कहाँ तृप्ति किस जिन्दगी की–

वसीयत यही तुम नहीं जानते हो
हकीकत सही तुम नहीं जानते हो

गगन के सितारो न महफिल सजाओ–
जगत को निगलने खड़ा है अँधेरा
यहाँ हर कुटी का घुटा जा रहा दम–
यहीं पर पड़ा कारवाँ का बसेरा
पडी है तुम्हें सिर्फ अपने अमन की–
खबर कुछ धरा की न आकाश वालो
कि जिसकी बदौलत तुम्हारा गगन है–

फजीहत यही तुम नहीं जानते हो
हकीकत सही तुम नहीं जानते हो

◆

नूतन मान

मानव नूतन मान तुम्हारा
मिला तुम्हें अभिमान तुम्हारा

युग करता है नित-नित नर्तन
नर्तन ला देता परिवर्तन
पाता है जग तब नव जीवन—
जीवन तुमको यान तुम्हारा
मानव नूतन मान तुम्हरा

पतझर आते देने नव-नव
डालों को हरियाली-पल्लव
सुमनों का प्रेमी भव-मानव
पुष्पित अब उद्यान तुम्हारा
मानव नूतन मान तुम्हारा

प्रातः का नभ स्वर्णिम-रंजित
पथिकों का पथ-पथ आलोकित
रवि की निधि यह तुमको अर्पित
उदय हुआ लो भान तुम्हारा
मानव नूतन मान तुम्हारा

तन-मन हुलसित पुलकित क्षण-क्षण
उर-अन्तर सुरभित प्रति कण-कण
कवि के कल्पित गुंजित अलि गण
गूँजा जय-जय गान तुम्हारा
मानव नूतन मान तुम्हारा

खूँटा

सच-मुच है यह बड़ा तपस्वी, नहीं लेष भर झूठा है
देखो कितनी दुबली-पतली, लकड़ी का यह खूँटा है

देखा इसने तेज़ धार तो, किञ्चित भी यह डरा नहीं
अगणित चोट बसूलों की खाया है तो भी मरा नहीं
बढ़ई ने जितना ही काटा, बनता गया नुकीला है
मुझे लगा तब, अपने दिलका, यह कितना गर्वीला है
इसी लिये इस वज्र हृदय धरती पर, इसको ठूँसा है
देखो कितनी दुबली-पतली लकड़ी का यह खूँटा है

किसी पेड़ की बड़ी डाल की बाँहों में ख़ूब पला था
अपने सुख की दुनिया में यह, तब फूला और फला था
किन्हीं निर्दयी हाथों ने ही, इसे काट कर अलग किया
कितना ऊँचा उठा हुआ था, नीचे इसको पटक दिया
लगता इसी बैर का बदला लेने को यह रूठा है
देखो कितनी दुबली-पतली लकड़ी का यह खूँटा है

जहाँ गड़ा यह गड़ा रह गया, तिल भर भी तो हिला नहीं
धूप-शीत-बरसातें आईं, कुछ भी इसको खला नहीं
केवल सूखी हड्डी के बल, वीरों से भी लड़ता है
बड़े-बड़े योद्धा ने खींचा, लेकिन नहीं उखड़ता है
स्वाभिमान जितना है इसको, उससे कहीं अनूठा है
देखो कितनी दुबली-पतली लकड़ी का यह खूँटा है

सुनता हूँ जब इसके पग में, हाथी बाँधा जाता है
रहता स्वयं अडिग यह उसको, चारों ओर घुमाता है
बहुत बड़ी है बात यहाँ पर लगती है जो छोटी-सी
किन्तु पहाड़ों की छाती में, छेद बनाती चींटी भी
इसलिये न इसको कहना, यह निरा काठका ठूँठा है
देखो कितनी दुबली-पतली लकड़ी का यह खूँटा है

नया इनसान बनाता हूँ

मैं हूँ ऐसा अद्‌भुत प्राणी इस फ़ानी दुनिया में—
हर आनेवाली मुश्किल को, आसान बनाता हूँ

नियम-परिधि पर जकड़े-जकड़े, चाँद सितारे चलते
जलते नहीं स्वयं, वे रवि की ज्योति चुरा कर जलते
मैं इतना स्वच्छन्द कि मुझको सभी बुलातीं राहें
जिस पथ चला नहीं मैं, उसकी गीली हुईं निगाहें
करूँ प्रथम पथ से मैं परिचय, कभी न सोचा करता—
मैं सभी अपरिचित राहों से पहिचान बनाता हूँ
हर आनेवाली मुश्किल को आसान बनाता हूँ

एक बार उठ गये चरण तो मैं नित चलता रहता
हर मंज़िल के बाद, नई मैं मंज़िल फिर-फिर चुनता
जिनके पग गतिवान पंथ पर, वे सुसताया करते
मेरे व्यथित प्राण शूलों पर, नित मुस्काया करते
ढोते भार थके जीवन का, जितने भी हम राही—
मैं विद्युत-ज्वाला भर उनको बलवान बनाता हूँ
हर आने वाली मुश्किल को आसान बनाता हूँ

जीने की जिनको साध, उन्हें मरना सिखलाता मैं
अर्थी पर सोये मुर्दों को, अब सुधा पिलाता मैं
जलती लाशों पर रख देता, अरमानों की गठरी
जब मेरी चुटकी बजती, चल पड़ती है हर ठठरी
प्राण पिरोता हूँ. नव-चेतन, रज-कण के पुतलों में—
मैं करके विधि से होड़, नया इनसान बनाता हूँ
हर आने वाली मुश्किल को आसान बनाता हूँ

पड़े यहाँ पर बिखरे-बिखरे, जितने भी ये पत्थर
एक दिवस थे किसी शिखर के, ये सब उन्नत प्रस्तर
अब तो आने जाने वाले, सब इनको ठुकराते
देखा है नीची नज़रों से जो भी पंथी आते
झुका दिया है इनके सम्मुख, मैंने मस्तक अपना—
मैं पूजा कर पांषाणों को भगवान बनाता हूँ
हर आने वाली मुश्किल को आसान बनाता हूँ

शूल मिले बहुतेरे मुझको, तन-मन के कूलों पर
मैं आँसू पी कर रोया हूँ, इस जग की भूलों पर
फिर भी किसी निमंत्रण पर, है प्यास बनी दीवानी
बाधाओं की तोड़ शृंखला, चला सदा अगवानी
आशंका से कभी न हारी है, यह हिम्मत मेरी—
मैं पावन अगम कि शापों को, वरदान बनाता हूँ
हर आने वाली मुश्किल को आसान बनाता हूँ

ना मुमकिन है

धरती के कण-कण को पहचान लिया है लेकिन–
मैं ख़ुद को भी पहचान सकूँ यह ना मुमकिन है

तौल लिया है पर्वत मैंने माशा-रत्ती से
नाप लिया नभ का अन्तर साँसों की रस्सी से
जाने कितनी बार गगन से भू पर आया हूँ
उलझ-उलझ काँटों में फूलों-सा मुस्काया हूँ
भू से नभ को उड़ना आसान बहुत है, लेकिन–
मैं नभ का बल अनुमान सकूँ यह ना मुमकिन है
मैं ख़ुद को भी पहचान सकूँ यह ना मुमकिन है

यहाँ व्योम के अंचल पर लोहा तैराया है
जहाँ गया तूफ़ानों को मैंने ठुकराया है
सागर के गर्जन में मेरी किश्ती थिरकी है
भारी भरकम 'ट्रेन' पटरियों पर से सरकी है
विस्तृत जग का हर कोना छान चुका मैं, लेकिन–
संकीर्ण हृदय को जान सकूँ यह ना मुमकिन है
मैं ख़ुद को भी पहचान सकूँ यह ना मुमकिन है

मनुजों की दुर्बलता का यह लाभ उठाया है
सृष्टि-सृजन कर विधि ने जितना नाम कमाया है
विज्ञानी दुनिया जब घातक अस्त्र उठायेगी
विधना की बूढ़ी अक्ल खड़ी तब थर्रायेगी
पल भर में प्रलयंकारी बन सकता हूँ लेकिन–
मैं जग में बन इनसान झुकूँ यह ना मुमकिन है
मैं ख़ुद को भी पहचान सकूँ यह ना मुमकिन है

धन-वैभव का लोभ मुझे नित ही भरमाता है
सगे बन्धु का शीश स्वार्थ से वह कटवाता है
विज्ञ आधुनिक मानव से यह धरती हारी है
महाकाल-यम से लड़ने की अब तैयारी है
वैसे तो मेरी काया भी नश्वर है, लेकिन–
यह सत्य पुरातन मान सकूँ यह ना मुमकिन है
मैं ख़ुद को भी पहचान सकूँ यह ना मुमकिन है

व्यर्थ की आराधना

कल्पना के पंख पर उड़ कर कभी
वन्दना के गान में गाता नहीं

भक्त हो वश भावना के पूजता—
है यहाँ पाषाण, कोई पूछता
किस लिये यह व्यर्थ की आराधना
जब कि है आराध्य ही पाहन बना
लोचनों के शुचि कलश के नीर का—
अर्घ्य भी पहचान वह पाता नहीं
वन्दना के गान में गाता नहीं

स्वप्न की हर बात सच होती नहीं
भीख में मिलते कभी मोती नहीं
कर्म में विश्वास जब पलने लगा
साथ मेरे कारवाँ चलने लगा
जब क़दम रुकते नहीं इन्सान के—
पंथ में तूफ़ान दहलाता नहीं
वन्दना के गान में गाता नहीं

लक्ष्य पाने तक बनानी सीढ़ियाँ
चलेंगी जिन पर युगों तक पीढ़ियाँ
आज का हर व्यक्ति ज़िम्मेदार है
भार सबके वास्ते साभार है
पाँव चाहे लड़खड़ा जाये कहीं—
सत्य का आधार बहकाता नहीं
वन्दना के गान में गाता नहीं

मैं धरती नभ का छोर हूँ

कब तक खोये पड़े रहोगे, अँधियारे के गेह में–
आश्रो मेरी बाँहों में, मैं धरती-नभ का छोर हूँ

गाश्रो ज्योतित गान गगन के मन पर मीठे राग से
और धरा का अँधकार दहकाओ दृग की आग से
काली तह के नीचे घुटती साँसों का मैं शोर हूँ
आओ मेरी बाँहों में मैं धरती-नभ का छोर हूँ

सर्व प्रथम आँसू में डूबे पथ का संकट झेल लो
फिर क्या मुश्किल, मेरे तट पर इन लहरों से खेल लो
पंचशील के सागर की मैं उठती मधुर हिलोर हूँ
आओ मेरी बाँहों में मैं धरती-नभ का छोर हूँ

तम का शासित दिवस काँपता, जाने किसकी रात में
संसृत के प्राणों पर बैठी, काली छाया घात में
वापस दो आलोक मुझे, मैं सर्वोदय का भोर हूँ
आओ मेरी बाँहों में मैं धरती-नभ का छोर हूँ

उत्पीड़ित यह जगत पड़ा है, निस्तल काजल-कूप में
उतरो, इसकी पीड़ा को अब, लादो सुख की धूप में
तुम हो अपराभूत सदा, मैं तुमको स्वर्णिम डोर हूँ
आश्रो मेरी बाँहों में मैं धरती-नभ का छोर हूँ

हरियाली चाहे छीन लो

पहिले तो तुम मुझे दुखों की गहराई में ठेल दो—
आँखों की हरियाली चाहे छीन लो

तीखा-मीठा घूँट सदा मैं पीने का शौक़ीन हूँ
जीवन भर के कटु अनुभव से हुआ कहाँ ग़मगीन हूँ
पहिले जग भर की कड़ुवाहट लाओ यहाँ उँडेल दो—
मधुरस की यह प्याली चाहे छीन लो
आँखों की हरियाली चाहे छीन लो

एक प्यास बुझती है ज्यों ही प्यास दूसरी जागती
सोई एक साँस की सिहरन, आग दूसरी माँगती
पहिले ज्वाला और सरोवर से कर लेने मेल दो—
शतदल की यह लाली चाहे छीन लो
आँखों की हरियाली चाहे छीन लो

अंगारे को चढ़ जाने दो अम्बर के उत्थान पर
क्या होगी वर्षा बिन छाया घन की रेगिस्तान पर
पंहिले प्राणों पर दुपहरिया जलती हुई धकेल दो—
ऊषा यह मतवाली चाहे छीन लो
आँखों की हरियाली चाहे छीन लो

पीड़ा में है डूबी दिन की जग मग अन्तर रागिनी
उसे अँधेरा इतना देकर मत दो धूमिल चाँदनी
पहिले तो तल में अकुलाये जन को इधर सकेल दो—
चन्दा की यह थाली चाहे छीन लो
आँखों की हरियाली चाहे छीन लो

किसे विसार दूँ

मुझे न अपनी मस्ती से अवकाश है–
दुनिया भर की आफ़त को कब प्यार दूं

दुख में रोना, सुख में हँसना व्यर्थ है
हँसने-रोने का जग में, क्या अर्थ है
अधरों पर मुस्कान, दृगों में नीर को–
भरने में हर प्राणी यहाँ समर्थ है
आनन-वासी दोनों ही तब द्वेष क्या–

किसका आसन पूछे बिना उतार दूं
दोनों प्रिय में किसको क्या अधिकार दूं
अपने मन की पीड़ा किस पर वार दूं

आँखों के दरिया में बहती अर्ज़ क्या
अधरों की मुस्कानों का है फ़र्ज़ क्या
अन्तर तो इन दोनों का नज़दीक है–
हाथ थमा दूँ इनके तब है हर्ज क्या
रहने दूँ विद्रोही तब मैं अश्रु को–
हँसी कहाँ से लाऊँ और उधार दूँ
दोनों ओर जवानी किसे विसार दूँ
अपने मन की पीड़ा किस पर वार दूँ

खारे आँसू बाँधे जलती प्यास को
भरने आया उनमें छिने मिठास को
वापस जाऊँ क्यों बदनामी ओढ़ कर
जब कि तौल कर लाया हूँ विश्वास को
मेरी निष्ठा बस इतना ही साथ दो–
क्रंदन को मैं गुंजन भरा सितार दूँ
और हँसी को आँसू का सिंगार दूँ
अपने मन की पीड़ा किस पर वार दूँ

सिंगार नहीं होता मैं

अगर न बहती तुम धारा में, तब साकार नहीं होता मैं

असह वेदना के आँसू में
बन कर तरी जहाँ उतरी तुम
चिर-अतीत से मैं हूँ संगी
सूनी हो या रत्न-भरी तुम
होता यदि विश्वास कि तज कर
पथ तुम कहीं न बह जाओगी–
तुम्हें पंथ इंगित करने को, यह अधिकार नहीं होता मैं
अगर न बहती तुम धारा में, तब साकार नहीं होता मैं

आँसू का आधार सिंधु को
लहरों ऊपर तुमको तिरना
प्रस्थानों का भाग्य कि असमय
पथ पर तूफ़ानों का घिरना
होता यदि विश्वास कि जग को
लेकर पार उतर जाओगी–
तब नाविक के युगल करों में, यह सिंगार नहीं होता मैं
अगर न बहती तुम धारा में, तब साकार नहीं होता मैं

बँधी-बँधी जीवन रेखायें
दिग-दिगन्त से तल अनंत तक
खड़ा यहाँ पतझार सभी को
हरियाली से ऋतु वसन्त तक
खोता यदि विश्वास कि पथ के
चट्टानों से टकराओगी–
बहुत असंभव तुम को लेकर, तब इस पार नहीं होता मैं
अगर न बहती तुम धारा में, तब साकार नहीं होता मैं

दुर्निवार इस अतल सलिल के
तट का अन्तर बहुत दूर है
सँभल-सँभल कर चलना राही
यह भव सागर बहुत क्रूर है
होता यदि विश्वास कि कोई
तट गह कर तुम रुक जाओगी–
फिर तो किसी यशी नाविक को, यह उपहार नहीं होता मैं
अगर न बहती तुम धारा में, तब साकार नहीं होता मैं

गुंजार

जब टूट चुके हों तार सभी, वीणा में कोई राग न हो—
ऐसे क्षण में गूँजा करता
गुँजार भरा मेरा जीवन

अन्तर में ज्वाला पलती है, आँखों से छलके गागर जो
मैं आग लगा कर पानी में, पी जाता खारे सागर को
वाणवनल का है रूप सदा, अंगार भरा मेरा जीवन
गुँजार भरा मेरा जीवन

गिन-गिन कर साँसों की घड़ियाँ, दुनिया में रहना सीखा है
तारों के संग चलना मेरा, नदियों से बहना सीखा है
सुख के सपनों से है इतना, सिंगार भरा मेरा जीवन
गुँजार भरा मेरा जीवन

जिस पथ पर चल कर आया हूँ, वे राहें सब वलिदानी हैं
जितने मेरे तलवे चूमे, वे कण-कण सब अभिमानी हैं
परिवर्तन लेकर आता है, हुंकार भरा मेरा जीवन
गुँजार भरा मेरा जीवन

जो गूँज रहा है दुनिया में, वह मस्त तराना मेरा है

जिससे है धरती झूम रही, वह गीत पुराना मेरा है
भर देता क्रन्दन में सरगम, झंकार भरा मेरा जीवन
गुँजार भरा मेरा जीवन

जब ग़ाफ़िल को सो जाने का, मधु रात निमंत्रण देती है
छलका कर मादकता पहिले, फिर बाहों में कस लेती है
तब जाग्रत स्वप्न दिखाता है, भिंसार भरा मेरा जीवन
गुंजार भरा मेरा जीवन

पग की ध्वनि प्रातः कीं सुनकर खुल जाती है निशि की निंदिया
जब कुंज-कली के नयन धुलें, चहकें पंक्षी महके बगिया
तब प्राणों को गतिमय करता, संचार भरा मेरा जीवन
गुंजार भरा मेरा जीवन

संकल्पों का बल है तन में, संघर्षों में जी लेने को
यह आतुर मन तत्पर रहता, जग की पीड़ा पी लेनें को
इस युग को अर्पित है सारा, उपकार भरा मेरा जींवन
गुंजार भरा मेरा जीवन

अपना ही संसार

कहाँ की व्यथा लुटा कर प्यार
चलाती जीवन का व्यापार

विकलता के क्षण को स्वच्छन्द
दिखाती है सपनों का लोक
विचरता प्राण जहाँ अविराम
न जिसमें कोई सीमा-रोक
धरा से दूर क्षितिज के पार
घुमा कर लाती बारम्बार

सतत अलफलता का परिणाम
सुकोमल छबि से देती बाँध
जगाती प्राणों में चुपचाप
जटिल बन कर जो सोई साध
कल्पना में सुख का संचार
हार को देती है धिक्कार

पहुँचता हूँ जलनिधि के तीर
खोल कर नाव चढ़ा कर पाल
भयातुर जीवन का सब मोह
छोड़ कर बढ़ता हूँ दे ताल
जहाँ पर गर्जन-जल-मझधार
भयंकर लहरों की हुंकार

अश्रु-पूरित गीतों के छन्द
गुँजाते उत्साहों के गान
न पथ का छोर न गति की नाप
बेग बन जाता है तूफ़ान
उधर आकर्षण छबि-सिंगार
इधर यह मेरा मन अविकार

पहुँच कर पार बाँध दी नाव
मिला जब तारों का यह देश
चढ़ा उन्माद चाँद का रूप
खुले ये जिस के केश अशेष
विमल-तन-गंध सुधा की धार
निरन्तर रही धरा पर झार

कल्पना में उद्बोधित स्वर्ग
दे दिया कितना यह अनुदान
प्रथम यह विस्मय की अनुभूति
देखकर मानव का सन्मान
जहाँ पर वृष्टि न ताप तुषार
यहाँ वासन्ती सदा बहार

भोग में लिप्त त्याग से मुक्त
नहीं उस जीवन में कुछ मर्म
सृष्टि यह निष्क्रियता की कुंठ
न कोई कर्म न कोई धर्म
यहाँ है केवल प्रमद-प्रसार
अकेले सुख में है क्या सार

रसातल भव नभ का कर बोध
चाहता मैं अब तन का यान
व्योम का पथ है विपुल अबाध
निरापद सत्वर है प्रस्थान
खोल दो बन्द मोक्ष का द्वार
मुझे बस अपना ही संसार

कथा करुण

सुन्दर तर संध्या की वेला
है घिरा जहाँ तम का मेला
वह जीवन क्षण भर का सुखकर—
धुल गया माँग का अरुण-अरुण
साधक के मन की कथा करुण

रंगीले सपनों के वे घन
बिखर गये बन कालिख क्षण-क्षण
यह चंचल काली-सी छाया—
आई है पथ पर बन असकुन
साधक के मन की कथा करुण

अंधकार धरती पर ठहरा
नभ तक है काजल का पहरा
पलकों पर नागिन-सी क्रीड़ा—
थिरका अब प्राणों का पाहुन
साधक के मन की कथा करुण

यह क्षुब्ध धरा, यह सुप्त जगत
भर रहा दृगों में गत-अनगत
उर में इच्छाओं का कम्पन—

बन गया प्राण का मीत सगुण
साधक के मन की कथा करुण

तिमिर बना जब अन्तहीन-घन
तैर चला तट-नील मीन-जन
बिखरा कर उसने कण-स्वर्णिम—

कर दिया जीर तन तरुण-तरुण
साधक के मन की कथा करुण

उज्ज्वल मुख का यह मधुर हास
अग-जग के पट पर नव-प्रकाश
लेकर विहँसी आशाओं पर—

खुख की पीड़ा, बन लास द्विगुण
साधक के मन की कथा करुण

भारत नाम मेरा

निर्भीक जीवन में प्रगति के पंथ पर—
मैं निरन्तर चल रहा, चलता रहूँगा

यह न पूछो यह सफ़र कब तक रहेगा
है जहाँ तक ज़िन्दगी, तब तक रहेगा
जब करोड़ों व्यक्ति मेरे साथ चलते
कारवाँ हरगिज़ नहीं यह रुक सकेगा
वलिदान से सींचे हुये उद्यान में—
फूल-सा मैं खिल रहा, खिलता रहूँगा
मैं निरन्तर चल रहा, चलता रहूँगा

बंजरों को तोड़, उसमें हल चलाता
स्वेद-जल से स्वर्ण माटी में उगाता
इस तरह से स्वस्थ होता जा रहा मैं
प्राण में उत्साह भर, मधु गान गाता
क्षीण जो थी अब पलट काया गई है—
किन्तु फिर भी ढल रहा, ढलता रहूँगा
मैं निरन्तर चल रहा, चलता रहूँगा

देखलो यह गात्र कितना सज रहा मैं
मैल तन की चल सलिल में तज रहा मैं
छा रही है मरुथलों में भी हरेरी
भाग्य का अब मंत्र ऐसा भज रहा मैं
भूख को वरदान जब तक मिल न जाये—
मैं तुला पर तुल रहा, तुलता रहूँगा
मैं निरन्तर चल रहा, चलता रहूँगा

तीर्थ अगणित आज मेरी कामना के
बन गये हैं पास जागी भावना के
कर रहा उत्थान अब सिंगार मेरा–
उद्योग, उद्यम और विद्युत-ज्योत्सना से
बन रहे हैं सुखद मेरे धूलि के कण–
लाड से मैं पल रहा, पलता रहूँगा
मैं निरन्तर चल रहा, चलता रहूँगा

रूप मेरा गिरि नगर, वन खाड़ियों में
बस रहा जग की कँटीली झाड़ियों में
झाँकता है चकित-सा यह विश्व सारा
रक्त कितना विमल है इन नाड़ियों में
हूँ नहीं बाधक किसी की शान्ति का मैं–
मैं सभी में मिल रहा, मिलता रहूँगा
मैं निरन्तर चल रहा, चलता रहूँगा

दूर करने के लिये, जग से अँधेरा
भोर का श्रम, द्योत का हूँ मैं चितेरा
सृष्टि अथ से इस सृजन पर दहन भी हूँ
जानता हर व्यक्ति भारत नाम मेरा
कुछ मुझे छू कर जले, कुंदन बने कुछ–
आग-सा मैं जल रहा, जलता रहूँगा
मै निरन्तर चल रहा चलता रहूँगा

लूटी गयी बहार

मिलीं किसी को दुख की रातें
मिलीं किसी को सुख की रातें
सुनता कौन किसी की बातें

मरघट पर है खड़ी जवानी, देख रहा संसार है
और नयी दुलहिन पाने को, मरण यहाँ तैयार है

पीड़ा और अभावों के क्षण, जग को मुफ़्त मिला करते
प्राण यहाँ अरमान बेच कर, आग ख़रीद जला करते
ऐसा यह बाज़ार कि जिसमें, मन है मँहगा, तन सस्ता
लाशों का अम्बार लगाये, वैभव जहाँ पला करते

कहीं फूल सी खिली जवानी
कहीं धूल में मिली जवानी
कहीं कूल पर जली जवानी

अनाचार के हाथों से यह, दुलहिन का सिंगार है
रोज़ मरण के साथ जवानी, का होता व्यापार है

प्यार खड़ा है धोखा बन कर, यह जग कितना है झूठा
एक प्राण-के प्राण यहाँ सब, फिर भी नाता है टूटा
द्वार खुले सबके लेने को, देने पर लटके ताले
ले बैठा है सागर कोई, घड़ा किसी का है फूटा

सागर बन कर बहरा बैठा
मेघ बदल कर चेहरा बैठा
बूँद-बूँद पर पहरा बैठा

प्यास बहुत अकुलाई-रोई, घन में टेर मल्हार है
कोई पुरवा बरसा दे, तब बादल का उपकार है

बड़ी अजब उलझन में उलझी, फँसी पड़ी यह दुनिया है
जीवन और मौत, लटकाये फिरता कर में बनिया है
उसके पीछे मुक्ति लुटाने, बैठा काशी का पण्डा–
बन कर ठेकेदार स्वर्ग का, फेरा करता मनिया है

बहुरुपियों की घात लगी है
लूट पाट कर रात जगी है
डगर-डगर पर आग लगी है

झुलसी-झुलसी साँसों पर, बज उठता भग्न सितार है
घायल मनको लगता, सारी दुनिया ही निस्सार है

क़िस्मत की दूकानों पर तो, बड़े ज़ोर का रेला है
जीवन और मरण के सौदों पर यह ठेलम-ठेला है
कोई लाभ कमाकर हँसता, कोई रोता घाटे पर
हानि-लाभ के हर पाँसे पर, दाँव सभी ने खेला है

छलियों की तो चलती जाती
जीत उन्ही को मिलती जाती
हार विचारी जलती जाती

गगन बना जो, वह दुखियों के तन की छाई क्षार है
एक सृजन के लिये जगत की लूटी गयी बहार है

मैंने देखा जीवन, देखा जीवन की पगडण्डी को
ठौर-ठौर पर देखा जग की सस्ती-मँहगी मण्डी को
रोटी के टुकड़ो पर होता, इज्जत का नीलाम यहाँ
बाँधे रहता मुट्ठी में, सौदागर तेजी मंदी को

इधर पसंघा तब उसका है
उधर पसंघा तब उसका है
गोरख-धंधा सब उसका है

इसी लिये यह दुनिया उसके चंगुल में लाचार है
उसका पंजा अगर खुले तो, दुनिया का उद्धार है

खूनी ही इतिहास है

यहाँ सभी की अपनी आहें
आहों की हैं अपनी चाहें
चाहों की हैं अपनी राहें
और सभी की राह-राह में, एक अंध विश्वास है
लेकिन गाता विश्वासों पर, मानव का परिहास है

उतरे हैं सब घाट-घाट पर, यहाँ विदेशी, सब के सब
एक देश के सभी प्रवासी, ये बहुवेशी, सब के सब
चोला सबको पार-पत्र है, यहाँ रोज़ दिखलाने को—
धरती की सीमा में फैले, भोगी बनकर सब के सब
सब का अलग-अलग डेरा है
सब का अलग-अलग घेरा है
यह मेरा है वह तेरा है
तेरे मेरे के झगड़ों में, सब का ही आवास है
महल खड़ा है मालिक बन कर, उजड़ा सा घर दास है

धरती के बटवारे पर, इस जग में जंग छिड़ा करती
है अरूप की रूप जाति यह, लेकिन रोज़ लड़ा करती
जाति-पाँति का बना लिया है, इस ने धोखे की टट्टी–
जहाँ स्वार्थ होता, जातों का दुनिया बाँध खड़ा करती

एक भूमि पर देश-भेद है
मनुज जाति में वेश-भेद है
शीश-शीश पर केश-भेद है

भेद-भेद के फैले मुँह में, भेद-भेद का ग्रास है
एक सृजक के एक रक्त को, रक्त-रक्त की प्यास है

कोई पोप बना बैठा है, कोई है पण्डित-मुल्ला
भजता कोई ख्रिस्त-ईश को, चुना किसी ने है अल्ला
अपनी-अपनी डफली पर, सब धर्म ढिंडोरा पीट रहे–
सृष्टा का स्वर डूबा उस में, गूँज रहा मज़हब-हल्ला

मज़हब में भी दाँव पेंच है
इधर खींच है उधर ऐंच है
फटी जा रही धर्म चेंच है

धर्म-धर्म की भीड़-भाड़ में, छिपा स्वार्थ उल्लास है
और मनुज के मूल धर्म पर, छाया हुआ विनाश है

यहाँ पतन के गहन गर्त में, मनुज न कोई सकुचाता
तन के सुख का रोग लिपट कर साँस-साँस में अकुलाता
पर स्वच्छन्द साँस कब बँधती, तन के ढीले बन्धन में–
बन जाती वह हवा और तब यह पंजर ही रह जाता

रूप सभी का ढलने को है
साँस हवा में मिलने को है
देह चिता पर जलने को है

और धुवाँ उठने से पहले, चुन लेना आकाश है
मगर नहीं सँग जाने वाला, कोई भोग-विलास है

पिला रही कोई मायाविन, तरल गरल निज अधरों का
चिर-अतीत यह मनुज बना है खेल मरण के प्रहरों का
फिर भी झुला रहा है जीवन, गर्वित तन के झूलों पर–
जब कि प्राण है बना बुलबुला, उठती-गिरती लहरों का

यहाँ नहीं कुछ भी स्थिर है
धँस जाने को यह हिम गिरि है
मिटने को जग भी आखिर है

और सभी को ज्ञात कि सब पर महा मृत्यु का रास है
तो भी जाने क्यों इस जग का, खूनीं ही इतिहास है
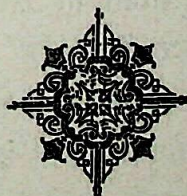
परम वीर

हे वीर तुम्हारा रुद्र रूप
अस्त्र-शस्त्र से महा पूर्ण
रण-पथ चुनते जब सक्रोध
लेने को प्रतिशोध-बोध
युद्धोन्माद के तुम समर-सूर
वलि वेदी पर होके प्रचण्ड–
दिखलाते भैरवी ताण्डव विशाल
तुम काल-चक्र को महा काल

आततायी दुःशक्ति की ललकार दूषित
धैर्य्य को कर देती रण का सूत्रधार
तब प्रलय का गर्जित स्वर गुँजाते
और विप्लव-दृश्य कर देते उपस्थित
पदचाप से धरती दहलती, श्रृंग हिलते
डोल उठता शेष, रवि की ज्योति ढलती–
लक्ष्य कर जब शत्रु पर करते प्रहार
धुँआधार, युद्ध की वर्षा अपार

पौरुष कर उठता अट्टहास
निर्मम प्रकोप बनता विनाश
धराशायी शत्रु लोहित लोहान
त्राहि-त्राहि कर माँगता प्राण-दान
भीषण ज्वाला का युद्ध-अनल
रिपु दल को कर तहस-नहस
ज्वाला पीते, दहते-तपते बढ़ते अबाध
स्वतंत्रता का लक्ष्य प्रेरित अगाध

तुम नीति-निपुण, गर्वित अनन्य
शिवं-शक्ति का दम्भ त्याग
विश्व रूप का मन में सम विचार
क्षमा-मार्ग चुनते हो बार-बार
है गर्व-गरिमा का गहन प्रण
कलंकित जय-विजय की नीति-रण—
हृदय में बनती-उफनती मधुर पीर
बे मिसाल भारत के तुम परम वीर

अतिक्रमण शत्रु का अनायास
कर देता तुमको अति अधीर
तब भी अधीर, अब भी अधीर
धैर्य्य का अवलम्ब उद्वेलित प्रतीक्षा
प्राण में बन फूटती ज्वालामुखी
कीर्ति शोणित से तुम्हारी है लिखी—
बलिदान से इस भूमि का है ठाट-बाट
वीरता का कब झुका उन्नत ललाट

विधवा का जीवन

गंगा के जल जैसी निर्मल, पूजा जैसी पावन,
कलुष रहित तुलसी के बिरवा जैसा विधवा का जीवन।
बनी कलंकित प्रतिमा बोझ पंक का ढोती,
शुभ-क्षण बन कर निषेध के तीर बेधते,
संध्या पर चढ़ी कालिमा, दीपक से उठे धुँआ-सी,
मुख पर टिका उदासी का डेरा, जीवन को विपदाओं ने घेरा,
धिक्कार बनी है अपने में, घर में, सारे जीवन में।
उसके साथ न कोई अपना, केवल एक व्यथा है—
शेष रह गई वह सुहाग की बीती हुई कथा है।

स्तब्ध निशा-सी भीत, शान्त सागर-सी चुपचाप,
कुरूर काल के कटु प्रवाह में डूबे सुहाग की स्मृति,
वह सुखद-स्वप्न कीं गाथा विस्मृति,
शीश झुकाये प्राय: बैठी नख से धरती कुरेदती,
आहत मन की पीड़ा बिखेरती,
अन्तर का हाहाकार दृगों में घन बन जाता,
महा प्रलय का दृश्य दिखाता,

किन्तु उमड़ता खारा सागर, आग हृदय की बुझा न पाता,
उसकी दीन दशा को गर्वित गूँगा अम्बर देखा करता,
तड़प रहे अन्तर की धड़कन धरती सुनती–
और समीरन छू कर जाता।
अपवाद बना कर सारी दुनिया उसे कोसती,
अन्त हीन उसकी विपदायें, बढ़ी व्यथायें,
कोई भी तो नाप न पाता, तोल न पाता,
उसकी पीड़ा बाँटे कोई, ऐसा कोई प्यार नहीं
त्यौहार नहीं, व्यवहार नहीं।

अत्याचार कठोर नियति का उसे जलाता,
जलती है पर राख न बनती,
मेरी कविता उसका अन्तर तुम मत छूना,
उसकी दारुन पीड़ा उर में फूट बहेगी,
मुर्छित होगी दुख के मारे, बिना सहारे,
जब भी जाना करुणा बन कर स्नेह लुटाना,
उसके घायल मन में थोड़ा–
जीने का उत्साह बढ़ाना।
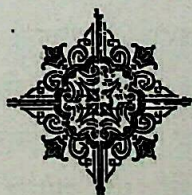
बन्द करो मत द्वार

होगी जीत तुम्हारी ही नित, केवल मेरी हार
मुझे अपावन कह कर अपना बन्द करो मत द्वार

मेरा कालिख तन मत देखो, देखो उज्ज्वल प्राण
कर लो मेरे प्राणों में तुम पूजा की पहिचान
बढ़ी विकलता लख कर मेरी, तुम बनते अनजान
मेरी प्यास पुरानी है यह नहीं नया अरमान
रोको मत, यह सागर जिस पर मेरा भी अधिकार
मुझे अपावन कह कर अपना बन्द करो मत द्वार

कंचन-घट में तुम लहराते, आकुल मन में प्यास
घेरा बन्दी है यह प्रहरी प्यासे का उपहास
जीवन भर की राह चला मैं लिये निराली आस
पूछूं किस से अब पथ अपना चले गये विश्वास
तट पर तृषा तड़पती कल-कल गाते तुम मझधार
मुझे अपावन कह कर अपना, बन्द करो मत द्वार

चुन कर लाया देने तुम को श्रद्धा के दो फूल
मेरे मन के वासी तुम हो, मेरे ही प्रतिकूल
एक लहर छलका कर दे दो चाहे जितना शूल
वर्ना जीने के दिन होंगे अपने सब निर्मूल
दो बूँदों के प्यासे पंथी, विनय करो स्वीकार
मुझे अपावन कह कर अपना, बन्द करो मत द्वार

व्याकुलता के क्षण में, अब साथी है केवल आह
नाप रही आहों की डोरी, निठुराई की थाह
चाहो तो तुम अब भी गह लो इस निर्बल की बाँह
आखिर हटने को है सीमा, बनने को है राह
अभियानों को रोक न पाती, कोई भी दीवार
मुझे अपावन कह कर अपना बन्द करो मत द्वार
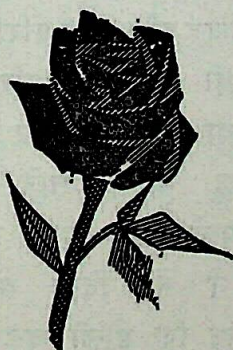
जज़बात

साँस का हर तार अब अंगार-सा है—
भर दिया दिल में जले जज़बात तुमने

मैं थका माँदा मुसाफ़िर सो गया था
जानता था यह कि दुनिया सो रही है
क्या पता मुझको कि मेरे वास्ते भी
दर्द थामें आँख कोई रो रही है
था सुनहरे स्वप्न में डूबा हुआ मैं
खुल गयी थी तब अचानक आँख मेरी
दूर थी जब तुम मलिन-सी चाँदनी में—
कर दिया था अश्रु की बरसात तुमने
साँस का हर तार अब अंगार-सा है—
भर दिया दिल में जले जज़बात तुमने

कुछ अपरिचित और चिर परिचित कभी की
लग रही थी तुम वहाँ परिचय छिपाती
हो रहा था ज्ञात अवसर व्याह का-सा
और दूल्हा चाँद, तारे थे बराती
मैं बढ़ा आगे कि कुछ उपहार दे दूँ
किन्तु मैं ने कर दिया था बहुत देरी
पहुँचना मेरा कि डोली चल चुकी थी—
पर, इशारों से किया कुछ बात तुमने
साँस का हर तार अब अंगार-सा है—
भर दिया दिल में जले जज़बात तुमने

एक क्षण भी रह न पायी दृष्टि में भी
और पीहर के पथों पर छिन गयी तुम
है नहीं शिकवा मुझे तुम से कभी भी
क्योंकि तब ख़ुद ही बहुत उन्मन गयी तुम
किन्तु यह संसार जो बाधा बना था
चाहता इसको बना दूँ ख़ाक-ढेरी–
रह न जाये भय कहीं फिर प्रीत को–
प्यार जैसा था किया अज्ञात तुमने
साँस का हर तार अब अंगार-सा है–
भर दिया दिल में जले जज़बात तुमने

कूच पल में कर गया जनवास नभ का
हैं पड़े कुछ फूल गीले से अजिर में
हर पटल की पलक में जल-कण बँधे हैं
जो सुवासित लुढ़क आये दृग-मदिर से
कुछ जगे कुछ अध जगे की नींद लेकर
छिप गई ओ ! कुछ उजाली कुछ अँधेरी
ज़िन्दगी भर के लिये मुझको दिया है–
प्राण जलने के लिये सौगात तुमने
साँस का हर तार अब अंगार-सा है–
भर दिया दिल में जले जज़बात तुमने

तरणी

तूफ़ानी लहरों पर कम्पित ओ मेरी आशा की तरणी
डोल-डोल कर मुझको लादो, तुम मेरी मन चाही धरणी

क्रूर थपेड़ो की चोटों से, देखो तुम विचलित मत होना
डग-मग होने दो तन लेकिन, अपने धीरज को मत खोना
होड़ ले सकूँ मझधारों से, मुझ में इतना ज़ोर कहाँ है
निर्बलता तैरा न सकेगी विप्लव का-सा शोर जहाँ है
साथ न छूटे तट तक रहना, ओ ! मेरे पथ की भय हरणी
तूफ़ानी लहरों पर कम्पित. ओ मेरी आशा की तरणी

आकर ये प्रतिकूल झकोरे, कँपा रहे हैं गात तुम्हारा
उलट-उलट जाती हैं राहें, बहुत दूर हो रहा किनारा
काले-काले पत्थर पथ में, मौन खड़े बाहें फैलाये
गहन व्यथा हँसकर सह लेना, जब-जब इनसे पग टकराये
त्वरित चलो तुम उल्लोलों पर मानो जल निधि की गज-करिणी
तूफ़ानी लहरों पर कम्पित ओ मेरी आशा की तरणी

जब तक तुम हो संगिनि मेरी, मेरे हाथों में भी बल है
इन हाथों की ये पतवारें, केवल विश्वासों का छल है
मात्र इशारों के शासन से, तुम होती रहती अनुशासित
चीर तरंगित वक्ष जलधि का, गतिमय जीवन करो प्रवाहित
मत सोचो यह मन है घायल, जब तक जीवन-आशा तरुणी
तूफ़ानी लहरों पर कम्पित ओ मेरी आशा की तरणी

मेरी साधें बँधी तुम्हारे कोमल आँचल के छोरों में
चकराना मत जलावर्त के कोलाहल मय झकझोरों में
बढ़ी चलो सत्कर्म पंथ पर, तुम्हें नया तट मिलने को है
मेरे चरण-परस से तट कीं सुमन वाटिका खिलने को है
कूलों का सिंगार बनो तुम, इस नव युग की मेरी रमणी
तूफ़ानी लहरों पर कम्पित ओ मेरी आशा की तरणी

पछ लहरे की रात

तुम मेरे मुस्काते मुख के प्यार से–
अपने मन की गलियाँ सभी बुहार लो

मेरे मन का सरगम बजता राग से
नीले नभ पर गूँज उठी है रागिनी
दृग से उमड़ा प्यार छलकता जा रहा
बरस रही है छनी हुई सी चाँदनी
काली कफ़नी पहनें तुम ग़मगीन क्यों
गहन कालिमा के रँग से रंगीन क्यों
पीड़ा कीं गहराई ग्राया लाँघ मैं
ग्रौर तुम्हारे नभ का लाया चाँद मैं
लो ! मेरे मुस्कानों की जलधार से–
अपनी चूनर चोली ग्रभी निखार लो
अपने मन की गलियाँ सभी बुहार लो

निंदियारी पलकों पर काली नारि की
चढ़ीं कालिमा धोने कोई आ गयी
घुटे-घुटे से सपनों में यह रूप की
किसी परिचिता की छबि कैसे छा गयी
पहने हुये रुपहरे रँग की चूनरी
सरक गया है आँचल सोयी सुन्दरी
दूर खड़ा अकुलाया जिस पर प्रात है
ओ ! हो ! यह तो पछलहरे की रात है
सिंचित कर इस की साँसों के सार से—
मूँदी पलकें कलियाँ सभी उघार लो
अपने मन की गलियाँ सभी बुहार लो

स्नान किया है कलियों ने शुचि नीर से
महक उठा फुलवारी का मन, झूमती
झोंपड़ियों में गंध लुटाने के लिये
नई हवायें फूलों का मुँख चूमतीं
लेकिन सोई विहगों की आवाज़ क्यों
पड़ी हुई है कलरव पर यह गाज क्यों
उठो ! तुम्हारे द्वारे आया प्रात हूँ
और तुम्हारे सुख की लाया बात हूँ
फूले-फूले कुंजों पर अधिकार से—
कलि की मुकुलित डलियाँ सज़ी निहार लो
अपने मन की गलियाँ सभी बुहार लो

सुबह सुनहरी आई प्राची-द्वार पे
अरुणाई ने ओढ़ी छवि की ओढ़नी

घूँघट खोले मुस्काई नव यौवना
धूमिल पथ पर फैल गयी है रोशनी
बन्द पड़े हैं घर-घर के अब द्वार क्यों
साँस-साँस को लेती नहीं पुकार क्यों
उड़ो विहंगम माली को आवाज़ दो
पंथी तुम, घर-घर में युग का राज़ दो
समय सुहाना आया है, उस पार से—
तुम इस तट की दुनिया नयी सँवार लो
अपने मन की गलियाँ सभी बुहार लो

कुँवारा नहीं हूँ

मेरे हाले दिल पर तुम्हें नाज़ है क्यों–
मैं तुम्हारी नज़र का मारा नहीं हूँ

बहुत बार तुमने बदल कर नज़ारा
छलकता हुआ जाम मुझ को दिखाया
मगर मेरी चढ़ती जवानी न बहकी
कि जब ख़्वाब में चाँद लेकर जगाया
हविश बावली तुम मुझे छल रही हो–
कि जिस इश्क़ से मैं सँवारा नहीं हूँ
मैं तुम्हारी नज़र का मारा नहीं हूँ

अतल की सतह पर पले प्राण मेरे
चला साथ मझधार के ज़िन्दगी भर
सदा ज्वार के साथ मैं भी बढ़ा हूँ
इसी से नहीं ग़म मुझे बे ख़ुदी पर
लहर ! चाहती बाँधना तुम भँवर को–
नहीं जानती, मैं किनारा नहीं हूँ
मैं तुम्हारी नज़र का मारा नहीं हूँ

काली-कलूटी यह सूरत हटा लो

यहाँ पर सुनहरी सुबह आ रही है
सदा गूँजती है खुले चंचुओं की
कि दुनिया नया रंग अब पा रहीं है
ठहर तुम सकोगी न मेरी नज़र में–
मैं रात्रि का शीत तारा नहीं हूँ
मैं तुम्हारी नज़र का मारा नहीं हूँ

बिखर जो गये शब्द को जोड़ने में
हिदायत किसी की नहीं मानता मैं
मुझे कल्पना का सहारा बहुत है
इनायत तुम्हारी नहीं चाहता मैं
क़लम छीनने की हिमाक़त न करना–
यहाँ मैं किसी का इजारा नहीं हूँ
मैं तुम्हारी नज़र का मारा नहीं हूँ

नयन-नीर मेरा नहीं बेचने को
तुम्हें क्या इसे मैं किसी को लुटाऊँ
किसी आबरू ने मुझे चुन लिया जब–
उसे छोड़ तुमको गले क्यों लगाऊँ
मुझे इस लिये तुम बनाओ न मुजरिम–
वरण हो चुका मैं कुँवारा नहीं हूँ
मैं तुम्हारी नज़र का मारा नहीं हूँ

कलियाँ खिलीं नहीं

जहाँ न फूला हो वसन्त, है ऐसी कोई गली नहीं—
कितने तरुवर अब भी ऐसे, जिन पर कलियाँ खिलीं नहीं

थिरकी-थिरकी आज चाँदनी, नयनों में आँजन आँजे
किरणों के वाहन से उतरी, धरती पर घूँघर बाजे
हौले-हौले पवन झुलाता आया क्यारी-क्यारी को
लुटा रहा है चन्दा चाँदी, अपनी रजनी प्यारी को
मेरी उन्मन पुरुवाई की पग-पैजनियाँ ढलीं नहीं
कितने तरुवर अब भी ऐसे जिन पर कलियाँ खिलीं नहीं

चीर वसन्ती पहने मधु ऋतु, डालों-डालों डोली है
महक रही बगिया में कोयल, मस्ती भर-भर बोली है
जिनके दिन बौराये हैं, वे फूली डाल न झूमें क्यों
हास विखेरें जब कलियाँ तो, अधर न भँवरा चूमें क्यों
मेरे जैसों के वसन्त को भूली गलियाँ मिलीं नहीं
कितने तरुवर अब भी ऐसे जिन पर कलियाँ खिलीं नहीं

मुझे न अपना कर वे मेरे उपवन में तो छाये हैं

एक न मैंने पाया तो क्या, जग वाले तो पाये हैं
मुझको है यह ज्ञात कि मन की चाही बात नहीं होती
होनी टल जाती अनहोनी की ही बात सही होती
किन्तु अभी तक कलि अनदेखी को अलि-बँहियाँ मिलीं नहीं
कितने तरुवर अब भी ऐसे जिन पर कलियाँ खिलीं नहीं

ओ ! अन्तस् में रमती छबि तुम किंचित मुझ से विलग कहाँ
दो प्राणों के एक रूप में, कहीं नहीं जब द्वैत यहाँ
तुम अदृश्य मुझ में तो मैं भी, तुम में ही साकार बना
जिस जड़-पल्लव में तुम सीमित, मैं ही वह तरु-डार बना
फिर भी किसी तृप्ति-अभिलाषा पथ से अँखियाँ टलीं नहीं
कितने तरुवर अब भी ऐसे, जिन पर कलियाँ खिलीं नहीं

विदेशी आये ना

सिहरे विरही गात, विदेशी आये ना

उत्पाती ये शीत झकोरे
बिना बुलाये आते
डाल-डाल के प्राण-प्राण के
पीले पात कँपाते

उर के सूने ठूँठ अभी बौराये ना
विदेशी आये ना

फूली-फूली अरहर झूमी
गेहूँ की हरियाली
पहन रही है नवल वधू-सी
कानों में अब बाली

पतझारों के गीत, मीत बिसराये ना
विदेशी आये ना

जानी पहचानी-सी आहट
कानों में जब आई
जाने कैसी हूक-कूक से
गूँज उठी अमराई

जागे पापी प्राण, प्रीत मुस्काये ना
विदेशी आये ना

मैं फागुन हूँ

सिंगार त्याग बैठी डालें, अँगड़ाई लो–
मैं खड़ा तुम्हारे द्वार तुम्हारा साजन हूँ

मेरी व्याकुलता तुम तक पहुँच नहीं पायी
इस लिये सताया तुम्हें विरह हिम-पातों ने
मैं बना वियोगी भटक रहा था इधर-उधर
भरमाया मुझको परवशता की बातों ने
मैं तो आने की जल्दी में ही लगा रहा
लेकिन कुछ नियम वहाँ के बाँधे थे मुझको
अब हरी-गुलाबी चोली-चूनर पहनो तुम
मेरे व्यवहारों को निठुराई मत समझो
आज व्यथित अन्तर की पीड़ा हर लेने को–
मैं सिहरे प्राणों की ऋतुओं का अभिवादन हूँ
मैं खड़ा तुम्हारे द्वार तुम्हारा साजन हूँ

बसने दो शतदल की कोमलता अधरों पर
थोड़ा सा और उभार कुचों पर आने दो
भर जाने दो कोयल की कूकों से बगिया
फिर कली-कली पर गीत भृंग को गाने दो
बौर भार से दबी जा रही अमराई यह
तुम इन उद्यानों का तारुण्य महकने दो
फूल-फूल पर अटकी बुलबुल की आँखें
छायी जहाँ बहारें प्यार चहकने दो
तुम और चढ़ा लो वासन्ती तरुणाई पर–

मैं अंग-अंग सहलाने का आश्वासन हूँ
मैं खड़ा तुम्हारे द्वार तुम्हारा साजन हूँ

मदिरा-सी पिये दिशायें बेसुध लगती हैं
गंध लिपट कर उड़ी पवन के आलिंगन में
लोट-लोट जाती हवा फूल की सेजों पर
उलझीं हैं अलि की अलकें, कलि के कंगन में
कुंजों-कुंजों स्वर्ण रश्मियों की जाली में
गजरे का दुर्वह भार उठातीं बल्लरियाँ
कहीं न मन की भावुकता रोके से रुकती
हो रहा मदिर संचार, महकती मंजरियाँ
गृह-कानन में मेरा सम्मोहन है छाया—
मैं विरही हर निश्वासों का सुख-साधन हूँ
मैं खड़ा तुम्हारे द्वार तुम्हारा साजन हूँ

केसर का उड़ा अबीर कंचुकी में भर लो
करो केश विनयास किवाड़े खोलो जी
लाया मैं साथ गुलाल, लगा लो रोली तुम
फूलों से किये सिंगार अजिर में डोलो जी
मादन से उमड़े नयन कपोलों पर लाली
देखो तो अपना बिम्ब हाथ में लो दर्पण
मैं वय किशोर-सा खड़ा हुआ हूँ सम्मुख अब
तुम सहम सकुच कर दो सुन्दरता यह अर्पण
रँग से भर लो मन की अकुलाई जगती को—
मैं तुम्हें समर्पित रंग-विरंगा फागुन हूँ
मैं खड़ा तुम्हारे द्वार तुम्हारा साजन हूँ

घन जब आये

सावन के ये घन जब आये

सूने पथ से उतरे जग के आँगन में ये मोतीं छिन-छिन
इनकी रिम-झिम की रासों में शीत हो गये तापों के दिन
चपला का आलिंगन पाकर गरज-गरज लहराये
सावन के ये घन जब आये

क्षुब्ध हृदय नालों ने पाई, जींवन में फिर नई रवानी
अंग-अंग में उमड़ रही है, सरिताओं की चपल जवानी
बिछुड़े ताल-तलैयों के अब हृदय मिले हरषाये
सावन के ये घन जब आये

मेंहदी के काँटों ने पाया, नरम हथेली का मधु चुम्बन
लगे लुटाने मंजरियों के अधर, हास सुन-सुन अलि गुंजन
विहँसी क्यारी की हरियाली मुग्ध सुमन मुस्काये
सावन के ये घन जब आये

हरी-भरी धरती दुलहिन का, यौवन नहीं छिपाये छिपता
पुलकित विहगों के नयनों में, छाई है आशा की ममता
पिहुक-पिहुक उठते वन-वन के मन-मयूर बौराये
सावन के ये घन जब आये

झूम रही झूलों के सँग-सँग, पेड़ों की ये शाखें तन्मय
गीतों पर अब झरे न जाने, कितने झर-झर मोती सुखमय
पावस से ले होड़ अधिक जल, विरहिन-दृग बरसाये
सावन के ये घन जब आये

बहू नवेली चली खेत से, भीगी लथपथ सिमटी तन में
लाज भरी वह फिसल रहे पग, इस यौवन की कटु उलझन में
पगडंडी पर मिले बटोही, कैसे लाज छिपाये
सावन के ये घन जब आये

सुधियों की बरसात

उमड़-घुमड़ कर बरसे बादर
भीगी कारी रात सखी !
छिप कर पलकों में रोती है, सुधियों की बरसात सखी !

तब तो सूखे नयनों में भी
चमके जगमग चाँद-सितारे
अब क्यों उमड़ी आँखों को है, जुगनू की सौगात सखी !
छिप कर पलकों में रोती है, सुधियों की बरसात सखी !

रीझ-रीझ जाता था जिस पर
मेरे इस मन का पागल पन
उस पर है अधिकार बहुत, पर हुई न पल भर बात सखी !
छिप कर पलकों में रोती है, सुधियों की बरसात सखी !

जिसे पुकारा वही न आया
है यह लेखा युगों पुराना
खोज थके कितने ही ज्ञानी, कारण हुआ न ज्ञात सखी !
छिप कर पलकों में रोती है, सुधियों की बरसात सखी !

मेरी पगली

सावन-भादों तू रोई
आँसू की पूँजी खोई
तब आज कहीं रितु बदली ।
अब हँस दे मेरी पगली !

●

वह चाँद लगा मुस्काने
चाँदनियाँ लगीं लजाने
लख तेरी चूनर उजली ।
अब हँस दे मेरी पगली !

●

सुधि तेरी पीं को आई
पाती है उनकी लाई
पुरवाई मचली-मचली
अब हँस दे मेरी पगली !

●

यह शीत लहर-सी सिहरन
बदला है, फिर यह जीवन
आ ! धोरे सँभली-सँभली ।
अब हँस दे मेरी पगली !

●

सबेरा बुलाओ

मिटाना अगर है जगत का अँधेरा—
अमा को हटाओ, न दीपक जलाओ

जिये जा रहा था जली ज़िन्दगी में
न वह रूठता तो अँधेरा न आता
बिछुड़ना कि जिसका बहुत खल रहा अब—
नहीं रूठता वह अगर प्यार पाता
छिपे नीड़ में सो रहे ओ ! विहग तुम—
उठो गान गाओ, सबेरा बुलाओ
अमा को हटाओ, न दीपक जलाओ

चला आ रहा है युगों से यही क्रम
वहाँ चाँद-सूरज छले जा रहे हैं
यहाँ रूप की इस निठुर रोशनी में
बिचारे शलभ नित जले जा रहे हैं
इसी पर्व में इन उठी अर्थियों को—
तनिक नीर दो और मातम मनाओ
अमा को हटाओ, न दीपक जलाओ

यहाँ अल्प आलोक है दे रहा जो–
वही दीप काजल घना बो रहा है
तमिस्रा बढ़ी आ रही काँपती लौ
घिरा तम बहुत दूर तक सो रहा है
सहारे न अब सूर्य्य औ चाँद के तो–
किसी ज्योत्सना का सपना दिखाओ
अमा को हटाओ, न दीपक जलाओ

दिया को जला कर थका है जगत यह
अमा कब गई है, रही कब दिवाली
भुला दो, बसी भ्रान्ति है जो हृदय में–
कभी भी न होगी निशा यह उजाली
सपन प्रात के जागते नयन लख लो–
दनुज को सुला कर, मनुज को जगाओ
अमा को हटाओ, न दीपक जलाओ

कठिन कुछ नहीं है अमन-चैन पाना
चलो उस तरफ, ज्योति सोई जहाँ है
विकल प्राण गाओ धरा पर सृजन के–
नये गान, सुख-शान्ति खोई जहाँ है
बनो इस तरह रात्रि का नव प्रहर तुम–
कि दिनकर नया नील नभ पर बसाओ
अमा को हटाओ, न दीपक जलाओ

यह दान बहुत है

पीड़ायें पीकर जी लेना, मुझको तो आसान बहुत है
दर्दीले अधरों के ऊपर, क्षण भर की मुस्कान बहुत है

वैसे तो मेरी राहों पर
अब तक कोई मिला नहीं था
कोई पंथी अगर मिला तो
पल भर संग-संग चला नहीं था
लेकिन तुमने चौराहे पर
भेजीं है किरनों की पाती
इस से लगता अँधियारे के पंथी को यह दान बहुत है
दर्दीले अधरों के ऊपर क्षण भर की मुस्कान बहुत है

मंगल वेला के आने का
मुझको तो कुछ भान नहीं था
शीश झुकाता उसको कैसे
जिसका मुझको ज्ञान नहीं था
किन्तु तुम्हारा स्नेह ले गया
उसके दर दर्शन करवाने
ऐसे जन को मिल जाये तो इतना-सा सम्मान बहुत है
दर्दीले अधरों के ऊपर, क्षण भर की मुस्कान बहुत है

नाप नहीं पाती है मेरी
लघुता अब अपनी ऊँचाई
मुझ से बड़ी दिखाई देती
है, मुझको अपनी परछाई
मेरे हाथ पहुँच पाये हैं
आज तुम्हारा उर छूनें को–
मेरे जैसे इस बौना को इतना-सा उत्थान बहुत है
दर्दीले अधरों के ऊपर, क्षण भर की मुस्कान बहुत है

क़दम मिला के चलो

चलो तो इस तरह चलो कि जगमगा के चलो
आदमी का हौसला बढ़ा-बढ़ा के चलो
क़दम मिला के चलो

घृणा की आग से महान यह जहान जल रहा
झुलस रहा कहीं चमन, अमन कहीं पिघल रहा
मनुष्य के हक़ूक़ को ज़ुल्मतें हड़प रहीं
न्याय की चुनौतियाँ क़ैद में तड़प रहीं
चलो तो इनक़िलाब का बिगुल बजा के चलो
क़दम मिला के चलो

धूप की मरीचिका हिरन को आब झूठ है
ख़्वाब में दिखा हुआ माहे-ताब झूठ है
आसमाँ झुका हुआ ज़मीन पर फ़रेब है
व्यर्थ का यक़ीन यह बना महान ऐब है
चलो तो हर तरफ़ ज़मीं उठा-उठा के चलो
क़दम मिला के चलो

एक क़ौम है यहाँ धर्म तो हज़ार हैं
तीर्थ हैं कहीं बने कहीं बने मज़ार हैं
जो पिला रहे ज़हर हमें दिखा सबाब को
राज़ रह न जाय आज खोल दो नक़ाब को
एक ही असीम को शीश झुका के चलो
क़दम मिला के चलो

मकान हो कि गाँव हो देश या जहान हो
हर जगह पड़ोस को प्रेम ही प्रदान हो
बाँट क्या सकेंगे हम ज़मीन - आसमान को
क्यों गुमा रहे यहाँ फ़िज़ूल में ईमान को
दोस्ती का हाथ इसलिये बढ़ा के चलो
क़दम मिला के चलो

झेल कर मुसीबतें अभाव को झुको नहीं
किसान व मजूर आज काम से थको नहीं
साम्राज्य शोक व विषाद का उजाड़ दो
समाज-द्रोह का शजर मूल से उखाड़ दो
प्राण में नसीब की आग जला के चलो
क़दम मिला के चलो

शोषकों से भूमि यह कभी न त्राहिमान हो
मनुष्य को मनुष्य का ज्ञान व गुमान हो
ज़िन्दगी विषाद से भरा ज़हर पिये नहीं
भूख से तड़प-तड़प आदमी जिये नहीं
ग़रीब व अमीर का फ़र्क मिटा के चलो
क़दम मिला के चलो

एक बार बाजुओं की ताक़तें पुकार लो
कल्पना के स्वर्ग को ज़मीन पर उतार लो
फिर समान बाँट दो कि यह धरा निहाल हो
जियो तो इस तरह जियो कि ज़िन्दगी कमाल हो
सुखों का स्वप्न सत्य से सजा-सजा के चलो
क़दम मिला के चलो

ग़ज़ल

नादान सही पर दुनिया का, कुछ राज़ समझता मैं भी हूँ–
जिस बात पे वह इतराते हैं, वह नाज़ समझता मैं भी हूँ

मेमार की क्या ग़लती इस में, तूफ़ान जहाँ बरपा रहते–
तामीर से पहले पुख़्ता हो, आग़ाज़ समझता मैं भी हूँ

पोशीदा हक़ीक़त रखकर जो, गुमराह मुझे ही करते हैं–
उन बे पर उड़ने वालों का, परवाज़ समझता मैं भी हूँ

हम दर्द हैं कितने जो मुँह से, इज़हार वफ़ा का करते हैं–
रूपोश जो उनके दिल की है, आवाज़ समझता मैं भी हूँ

जब होती ख़ुदा की रहमत है, तब ख़ाक सितारा बनता है–
वरना उनकी इस शोहरत का, अनदाज़ समझता मैं भी हूँ

ग़ज़ल

इन बहारों के आने का क्या क़ायदा
जब न मिलता चमन हो तो क्या फ़ायदा

एक दुनिया यहाँ मिल गई है मुझे
जब न उस में अमन हो तो क्या फ़ायदा

मिल रहे हैं यहाँ दोस्त अहबाब जो
बात उनकी चुभन हो तो क्या फ़ायदा

ख़्वाब में जिस महल को दिखाते रहे
झूट का वह सपन हो तो क्या फ़ायदा

रोज़ सीने पे आँसू बरसते रहे
जब न बुझती जलन हो तो क्या फ़ायदा

चार दिन की दराज़ी न दो उम्र को
ज़िन्दगी जब झखन हो तो क्या फ़ायदा

साँस जीने की ख़ातिर मुझे जो मिली
बन गई वह घुटन हो तो क्या फ़ायदा

फिर बुलाना न मुझको इसी ख़ल्क़ में
दे न सकता कफ़न जो तो क्या फ़ायदा

बूढ़े की कुटिया

रंग महल पर चढ़ी जा रही किस बूढ़े की कुटिया

चकित झाँकते महल निवासी
टूट गया क्या घेरा !
पहरेदार सो गये सब या–
शासन रहा न मेरा !
स्वर्ण-कलश डर गया देखकर तीन छेद की लुटिया
रंग महल पर चढ़ी जा रही किस बूढ़े की कुटिया

ढुलक गया मदिरा का प्याला
चाँदी का रँग बदला
शोषण का परिणाम खड़ा इस–
वैभव का दिल दहला
अब गायेगीं गीत अटा पर चरर-चरर-चूँ खटिया
रंग महल पर चढ़ी जा रही किस बूढ़े की कुटिया

झलक रहा चिथड़ों से छन कर
यह जिसका तन–कंचन
कल के आश्वासन पर उसका
पुलकित है मन उन्मन
रचवाये गी रास अटा पर अब रमई की बिटिया
रंग महल पर चढ़ी जा रही किस बूढ़े की कुटिया

★

९. मुक्तक

तुम उसी पुरानी गाथा को दोहराते हो
जब समय यहाँ प्रिय उत्थानों की बात करो
धरती की प्यास न बुझ पाती जब पावस से–
तो खूब करो श्रम और स्वेद बरसात करो

लुट चुका अमीरी का बाना अब दुनिया से
साथी ! अब दिन आये हैं मेहनत वालों के
गलियारे सब हिल-मिल कर बसने वाले हैं–
झोपड़ियों पर महल बनेंगे कंगालों के

बीते दिन का रोना रोने से क्या होगा
लगता भविष्य का चित्र बहुत ही उज्ज्वल है
माना, निर्माणों की राह, अभी है लम्बी–
क्यों घबराऊँ, जब तक हिम्मत का सम्बल है

दे सको साथ तो पथ पर कोई रोक नहीं
लेकिन तुम मेरा पाँव पकड़ कर मत खींचो
हो प्रगति तुम्हारी घातों से सह लूँगा मैं–
पथ का अवरोध बनो तो मुझ पर मत रीझो

मैं भार तुम्हारा भी लेकर चल सकता हूँ
उस श्रम के लिये न कुछ मज़दूरी मागूँगा
तुम प्यार करो यदि मेरी ऐसी आदत से–
तो चलो तुम्हें भी मंज़िल तक पहुँचा दूँगा

घन घिरे

झकझोरती पुरवा हवा
तन की तपन कुछ कम हुई
धूप से तपती धरा की
धूलि थोड़ी नम हुई
मौन-सा चुप-चाप आये–
व्यौम पर उतरे
घन घिरे

तप्त किरनों का सघन वह
जाल, सिमटा छाई घटा
अवनि के प्रकाश-पट पर
बस गई छाया की छटा
मेघ गर्जन के सरोवर–
निर्मल जल भरे
घन घिरे

मुग्ध हो कर मोर पिहके
प्यास के विश्वास जागे
टूट कर बिखरा गगन का
माल, जिसमें बूँद तागे
तरल नव जीवन लिये वे–
मोती से झरे
घन घिरे

कल

ओ ! मेरे मन के मन भावन
आओ ! बन कर शुचि-शुचि पावन

रोज़ नया 'कल' रूप तुम्हारा
संप्रति शीत-स्पर्श तुम्हारा
बस इतना उत्कर्ष तुम्हारा—
घर-आँगन सब लगे सुहावन
आओ ! बन कर शुचि-शुचि पावन

शुभागमन तव मंगल मय हो
जन-जन को सुख से परिचय हो
सुख भी ऐसा, जो निर्भय हो—
दिशा-दिशा बन जाय सुहावन
आओ ! बन कर शुचि-शुचि पावन

समता दो कि विषमता जाये
पीड़ा अब न अश्रु बरसाये
पावस का घन जब-जब गाये
हरियाली का हो हर सावन
आओ ! बन कर शुचि-शुचि पावन
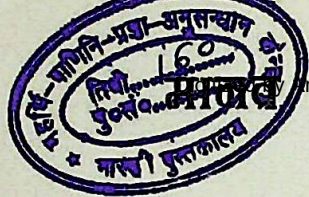
मानव चल रहा उसूलों पर

अम्बर रोया—दृग-जल खोया
विहँसी कलियाँ नव झूलों पर

रजनी भागी—दुनिया जागी
अलि-उर उलझे हैं फूलों पर
विहँसी कलियाँ नव झूलों पर

मिल विहग मधुररस घोल रहे
अपनी भाषा में बोल रहे
सरिता बहती—मन की कहती
हरियाली खड़ी दुकूलों पर
अलि-उर उलझे हैं फूलों पर

हे-हे-हैया—थिरकी नैया
चढ़ गये पाल मस्तूलों पर
हरियाली खड़ी दुकूलों पर

विश्वास पंथ पर डोल रहे
वे द्वार बन्द सब खोल रहे
दुख जाने को—सुख लाने को

मानव चल रहा उसूलों पर
चढ़ गये पाल मस्तूलों पर

तुम भी आओ—सँग-सँग गाओ
क्या रोना पिछली भूलों पर
मानव चल रहा उसूलों पर

▲ ▲

पूरब की लाली

फूलों की क्यारी में, कुंज और बेल है
कलियों की दुनिया में स्नेह भरा मेल है
बुलबुल की आँखों में प्रीत है बहार की
पूरब की लाली में वेला भिसार की

माली था जाग रहा नींद भरी रात में
सावधान रहता है उपवन की बात में
डाल-डाल झूम रही फूले कचनार की
पूरब की लाली में वेला भिसार की

चादर है सोन रंग धरती के अंग पर
मचल रहा अंग-अंग यौबन के शृंग पर
रूप पर लोनाई है मानव के प्यार की
पूरब की लालीं में वेला भिसार की

आनन पर तेज-पुंज, पावक है पंक को
पावन वीरांगना दाहती कलंक को
पुनींत व अभीत है बहू यह दुलार की
पूरब की लाली में वेला भिसार की

◆◆

संकल्पशील जीवन मेरा

सूनें तम-पथ पर जब कंटक
बन जाते प्राणों को संकट
उन शूलों को क्या दूँ उत्तर—
कितना घायल मन्थन मेरा
संकल्पशील जींवन मेरा

किसके भेजे वे पंक मिले
कितने ही अशुभ कलंक मिले
फिर भी पातक के हाथों से—
धूमिल न हुआ चन्दन मेरा
संकल्पशील जीवन मेरा

बीते दिन की ग़मगीन कथा
मेरी संगिन है सिर्फ़ ब्यथा
पीड़ा को रोके अधरों पर—
मुस्काता है क्रन्दन मेरा
संकल्पशील जीवन मेरा

छलना ने जब मुझको रोका
संयम ने हरदम है टोका
मन मंदिर में बैठा अब तक—
कितना दृढ़ है वन्दन मेरा
संकल्पशील जीवन मेरा

गिद्ध दृष्टि

मेरे शोषकों की गिद्ध दृष्टि
मुझ पर हमेशा रही है
आज भी है और कल भी रहेगी
मेरी पूरी ज़िन्दगी का यही हिसाब है
यह छोटी कहानी नहीं पूरी एक किताब है

मुझे मक्खन खिलाया नहीं–
दूर से दिखाया जाता है
तोले भर वज़न को बढ़ाकर–
छानबे रत्ती बताया जाता है
मुझे बड़े-बड़े सुहाने ख़्वाब मिले हैं
जिससे मेरे अँधेरे में नहीं–
दिन के उजाले में चिराग़ जले हैं

मेरे हमदर्दों ने मुझे चूस कर–
अपने गालों की लाली बढ़ाया
अथवा मेरे ख़ून की धारा
किसी और की नसों में चढ़ाया
मेरे ख़ून का आख़िरी क़तरा भी–
शोषण के लिये है
मेरी आने वाली मौत–
मेरे हमदर्दों के पोषण के लिये है

मेरा कभी न परिचय पूछो

जिसकी साँसों पर हो पहरा
उर में घाव छिपाये गहरा
तन पर विकट बवंडर ठहरा
कितना स्नेह दिया है जग ने—
सुख का मधुर न संचय पूछो
मेरा कभी न परिचय पूछो

विपदाओं में घिर कर जीवन
सहता रहा सदा उत्पीड़न
जितना खोला कसता बन्धन
काँटों पर कब तक है चलना—
पथ का और नं शंसय पूछो
मेरा कभी न परिचय पूछो

क्या था बचपन, क्या है यौबन
द्वार खड़ा है यह वृद्धापन
जुड़ा मृत्यु-जीवन गठबन्धन
जग के सुखद मंच पर असफल—
कितना विषम न अभिनय पूछो
मेरा कभी न परिचय पूछो

प्रथम अंक का निकट विसर्जन
आखिर होगा पट-परिवर्तन
तब होगा फिर तांडव-नर्त्तन
दृश्य कौन सा है अब बाक़ी—
इसका अभी न निश्चय पूछो
मेरा कभी न परिचय पूछो
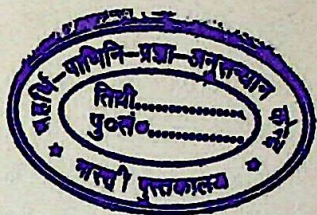
मोती जेहि माँटी माँ उपजै

बरसात गयी ऋतु है बदली, धरती-ग्राकाश-सितारन-माँ
मुसकाय रही सगरौ धरती, इन खेतन माँ वन-कानन माँ

सब के मन माँ बैठी चुपके, सुख कै पीड़ा ग्रकुलाय रही
बहु भाँति किसानन के मन को, चुपके-चुपके समुझाय रही
रस से भीनी माटी लहकी, जन-जीवन माँ उत्साह बढ़ा
कुछ व्यापि रहा सब के मन माँ, वह रूप न जैसे जात पढ़ा
अब गीत गुँजाय रही रितु यह, इन बैलन माँ हरवाहन माँ
मुसकाय रही सगरौ धरती, इन खेतन माँ वन-कानन माँ

हरवाह गहे हर कै मुठिया, वह बैलन को ललकारि रहा
माँटी मँ धँसा जब फार चला, तब सारा खेत उघारि रहा
हर छोरि सरावनि नाधि चढ़ा, अब गहि के खेत मयावत है
सँवरे कण माटी कै जैसे, वह चादर तानि बिछावत है
यहि भाँति लगी है होड़ हियाँ, हर खेतन माँहि-सेवानन माँ
मुसकाय रही सगरौ धरती, इन खेतन माँ वन-कानन माँ

हरखाय चना, बेझरा, अरसी, सरसो, राई गोहूँ चुनि के
बहु भाँति मसूर, मटर, चपरी, जव, बोय रहे मन माँ गुनि के
मिलि स्नेह गवा जब माटी कै, तब बीज मँ अंकुर फूटि गये
लखि के हरियान किसान रबी सुख-सागर माँ सब डूबि गये
लहराय रही, कुछ गाय रही, माया उनकी मुसकानन माँ
मुसकाय रही सगरौ धरती, इन खेतन माँ वन-कानन माँ

अब शीत कठोर बयारि चली, जो गहि के प्राण कँपावति है
बे हाल ग़रीब बेचारन का, रतिया भै आगि तपावति है
कुछ जीवन के दिन काटि रहे. गिनि-गिनि के साल बुढ़ाय गये
जेहि से कुछ आस रही वन का, वै उलटा पाठ पढ़ाय गये
दुख फूटि बहे जब नैनन से, तब लागति झरि जस सावन माँ
मुसकाय रही सगरौ धरती, इन खेतन माँ वन-कानन माँ

अभिमान भरी फूली सरसो, अब पीली सेज सजावति है
खेती लहकी हुलसी मन माँ, कुछ कहि-कहि के समुझावति है
सब के वे कन्त वसन्त मिले, तब आज केराव फुलाय गई
पतझारन माँ लखि के कोंपल, फिर बौर मँ पीर भुलाय गई
पंछी हरखे उड़ते फिरते, है आस टिकी विश्वासन माँ
मुसकाय रही सगरौ धरती, यहि खेतन माँ वन-कानन माँ

कनफूल पहिरि के नीलम कै, अरसी अरसी को देखि रही
झमकावत कुंडल झूमि चना, अरहर हँसि रेख उरेखि रही
छबि जात बताय न गोहुन कै, जस कान मँ बाली झूमति है
झुकिके झकझोरन माँ चुपके, बाली को बाली चूमति है
हरसी-सरसी-बिहसी ममता, सुख नाहिं समात परानन माँ
मुसकाय रही सगरौ धरती, यहि खेतन माँ वन-कानन माँ
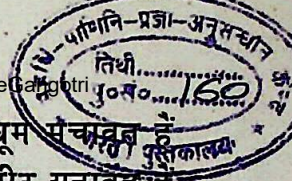
सब बाल-गोपाल जहाँ जुटि गे, सब खेलत धूम मचावत हैं
यहि मस्त वसन्त बहारन माँ, वे गाय कबीर सुनावत हैं
है राज हियाँ चरवाहन कै, सब गुल्ली-डंडा खेलि रहे
पछुआ कै शीत बयारन को, वे खेलन माँ सब झेलि रहे
मन मोहत हैं, वे सोहत हैं, मटमैल फटे परिधानन माँ
मुसकाय रही सगरौ धरती, इन खेतन माँ वन-कानन माँ

अलाव जला है पुआल बिछी, सब गोलँहि-गोल मँ बैठि गये
फिर ढोल मँजीरा झाँझन की, झनकारन माँ सब पैठि गये
कहुँ सूर-कबीरा कै चरचा, कहुँ राग भरी रामायन है
कहुँ माति गवा फगुवा डटि के, कहुँ होति कथा पारायन है
भुलवाय रहे दुख-दर्द हियाँ, रँग छाय रहा चौपारिन माँ
मुसकाय रही सगरौ धरती, इन खेतन माँ वन-कानन माँ

होली रँगि गै रँग से अँग को, सत रँगन माँ रँगि गै धरती
भुलवाय रही कटुता पिछली, सुख-स्नेह सना मन माँ भरती
हँसि धाय ठठाय धरैं गहि के, हरखाय रहे सजनी-सजना
भरि मूठ निकारैं झोलिन ते, मुख पैं मलि देंहि गुलाल घना
सब स्नेह पगे मिलि भेंटि रहे, घर-द्वार गली-गलियारन माँ
मुसकाय रही सगरौ धरती, यहि खेतन माँ वन-कानन माँ

अब साल नवा आवा बदला, सर सम्बत खेती पाकि गयी
सब काटैं-पीटैं माँ जुटि गे, तक़दीर नई अब जागि गयी
फिर दाँय-ओसाय अनाजन कै, रासि लगाय बनावत ढेरी
लखि रासि मनै मँ सराहि रहे, तब माथ नवाय लगावत फेरी
दुख-दारिद जीवन कै हरिगा, भरि गा सुख से, खरिहानन माँ
मुसकाय रही सगरौ धरती, इन खेतन माँ वन-कानन माँ

जब लूह चला बैसाख तपा, फिर जेठ रहा अंगार बना
तब लोग ज़ियावत जो जग को, तपते दहते रहते कितना
उफनाय नदी तन से बहती, सब लेत पसीनन माँ डुबकी
वे भूख-पियास भुलाय रहे, परवाह कहाँ वनका ख़ुद की
जरि ख़ून रहा तनकै तबहूँ, कम होत न ज़ोर किसानन माँ
मुसकाय रही सगरौ धरती, इन खेतन माँ वन-कानन माँ

फिर आय असाढ़ घिरा घन से, बरसा तब दादुर टेर लगी
महकी महि बीज परा, जगिगे, लहरात-सुहात ख़रीफ़ उगी
आल्हा गड़का, कजरी सुनिके, अब सावन झूला झूलि रहा
गुड़िया-छट्ठी कजरी-तिजिया, त्यौहारन माँ सब भूलि रहा
मेंहदी जँचती फबती बिंदिया, सब वारि कुमारि सुहागिन माँ
मुसकाय रही सगरौ धरती, इन खेतन माँ वन-कानन माँ

कुछ पाकि फ़सल सावाँ कटता, पकता कोदौ भुट्टा महका
सब धान, जुवार, उरद, बजरा, जिन पर दाना लदिगा चमका
अब लौटि गये बदरा, उतरी कुछ शीत बयारि जड़ावति है
घर माँ यह आज अनाज नवा, सुख के सब बात सुनावति है
कहुँ होत कथा परसाद बँटा, खेतिहर-मज़दूर किसानन माँ
मुसकाय रही सगरौ धरती, इन खेतन माँ वन-कानन माँ

मोती जेहि माँटी माँ उपजै, वहि माठी को यह माथ झुका
जिनके तन माँ यतना पौरुष, वहि पौरुष को यह माथ झुका
मज़दूर-किसान-कुटुम्बन को, दुखिया जन को यह माथ झुका
शत बार झुका उन बैलन को, हरवाहन को यह माथ झुका
यह माथ झुका जन-शोषित को, जो लुटते बीच बज़ारन माँ
मुसकाय रही सगरौ धरती, इन खेतन माँ वन-कानन माँ